MV_January 2019 final for printing:Layout 1 1/16/2019 5:43 PM Page 3

वर्ष 5, अंक 17, जनवरी-2019
पौष, वि. सं. 2075, ₹ 50

मंगल विमर्श

त्रैमासिक

वादे वादे जायते तत्त्वबोधः

अंदर के पृष्ठों पर

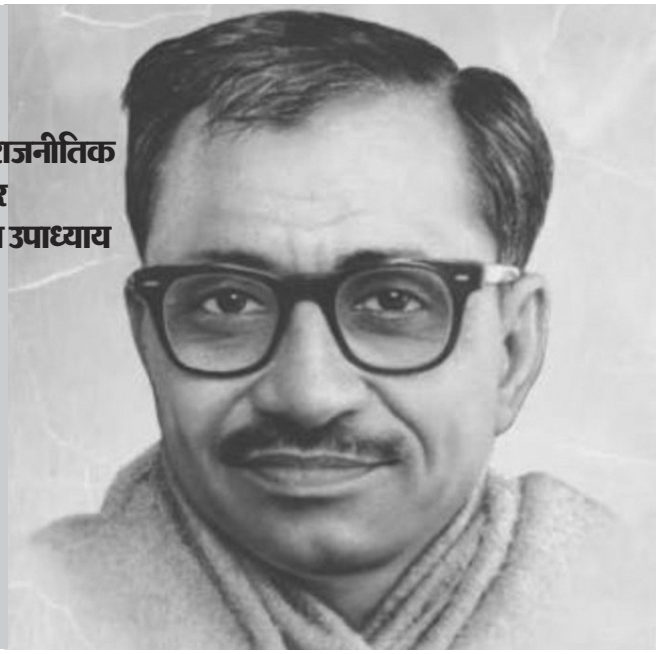

6-17
समकालीन राजनीतिक प्रवृत्तियाँ और पं. दीनदयाल उपाध्याय
डॉ. प्रमोदकुमार दुबे

18-21
राष्ट्रवाद : भारतीय चिंतन
ओम प्रकाश दुबे

22-31
राष्ट्रीय नागरिकता रजिस्टर
ओम प्रकाश मिश्र

32-37
भुक्ति-मुक्ति प्रदाता पशुपतिनाथ
दामोदर शाण्डिल्य

38-41
हरि को भजे सो हरि का होई
डॉ. चंदन कुमारी

42-47
आदर्श आचरण से बच्चों को सिखाइए
सीता राम गुप्ता

48-53
कैसे अस्तित्व में आई वस्तु व सेवा कर प्रणाली
डॉ. विनय कुमार श्रीवास्तव

54-57
डेंगू से डरें नहीं : ठीक से करें उपचार
डॉ. सुनील आर्य

58-62
समाज में महत्त्वपूर्ण है समरसता का भाव
रवीन्द्र प्रसाद सिंघल

मुख्य संरक्षक
डॉ. बजरंगलाल गुप्ता

प्रधान संपादक
ओमीश परुथी

संपादक
सुनील पांडेय

संयुक्त संपादक
डॉ. रवींद्र अग्रवाल

प्रबंध संपादक
आदर्श गुप्ता

प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादक आदर्श गुप्ता द्वारा मंगल सृष्टि, सी-84, अहिंसा विहार, सेक्टर-9, रोहिणी, दिल्ली- 110085 के लिए प्रकाशित एवं एक्सेल प्रिंट, सी-36, एफ एफ कॉम्पलेक्स, झंडेवाला, नई दिल्ली द्वारा मुद्रित।

RNI
DELHIN/2015/59919
ISSN
2394-9929
ISBN
978-81-935561-5-3

फोन नं.
+91-9811166215
+91-11-27565018
+91-11-42633153
ई-मेल
mangalvimarsh@gmail.com
वेब साइट
www.mangalvimarsh.in

मंगल विमर्श पत्रिका में व्यक्त विचारों के लिए रचनाकार स्वयं उत्तरदायी हैं। संपादक, मुद्रक व प्रकाशक का उनसे सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

सभी विवादों का न्याय क्षेत्र केवल दिल्ली होगा।

MV_January 2019 final for printing:Layout 1 1/16/2019 5:43 PM Page 4

समाज में हिंस्र व उग्र व्यवहार की बढ़ती प्रवृत्ति अत्यंत शोचनीय है। मानव मानवता को लज्जित करने वाले दुष्कर्म कर रहा है। उसे संस्कारित करने के लिए पारिवारिक परिवेश का परिकृष्त होना ही आशा की एक मात्र लौ है।

MV_January 2019 final for printing:Layout 1 1/16/2019 5:43 PM Page 5

अथ

आज हमारे समाज में निरंतर बढ़ रही हिंसा की प्रवृत्ति अत्यंत शोचनीय है। मैं यहाँ आतंकवादी संगठनों द्वारा किए जा रहे नरसंहार से इतर पारिवारिक परिदृश्य एवं सामाजिक परिवेश में नित्य प्रति हो रहे हिंस्र दुष्कर्मों को रेखांकित कर रहा हूँ। आज के समाज में खून-खराबों, हत्या व बलात्कार की घटनाओं का बढ़ना चौंकाने वाला है। सामान्य जन का जरा-जरा सी बात पर उग्र व आक्रोशित होकर, हिंस्र व्यवहार करना अवश्य ही चिंतनीय व विवेचनीय हैं।

आज के अखबार व इलेक्ट्रॉनिक मीडिया आम आदमी द्वारा किए जा रहे जघन्य कृत्यों से पटे पड़े हैं। कहीं बेटा बाप के नाम की सुपारी दे रहा है, कहीं पोश सोसायटी में रहने वाली महिला, प्रेमी से मिलकर पति का गला घोंट, उसके शव के कई टुकड़े कर, प्लास्टिक की थैलियों में डालकर कहीं वीराने में डंप कर आती है। इसके अतिरिक्त नन्हीं-नन्हीं बालिकाओं से दुष्कर्म करके उन्हें मार डालने की लोमहर्षक घटनाओं की तो बाढ़ आई हुई है। ऐसी घटनाओं के बारे में पढ़कर स्वयं के मानव होने पर ग्लानि होती है। ऐसे बर्बर व्यक्तियों को मानव तो कहना ही नहीं चाहिए, क्योंकि यदि उनमें जरा-सी भी मानवता बची होती, तो वे ऐसे पाशविक कार्य कभी नहीं करते। ऐसे व्यक्तियों के लिए कुत्सितार्थी शब्द बौने प्रतीत होने लगे हैं। ये अधम प्राणी रसातल में गिरकर भी और नीचे जाने के लिए सुरंगे खोद रहे हैं। धिक्कार है!

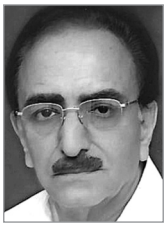

ओमीश परुथी
एसोसिएट प्रोफेसर (से.नि.)
प्रधान संपादक

ध्यातव्य है कि इन कारनामों को अंजाम देने वाले कोई पेशेवर अपराधी नहीं हैं, सामान्य लोग हैं, कई बार तो पति या पत्नी की हत्या करने वाले संभ्रांत पेशेवर, यथा- डॉक्टर, इंजीनियर अथवा शिक्षक होते हैं। प्रेम के त्रिकोणात्मक संघर्ष में वे इतने तनाव व लालसा से ग्रस्त हो जाते हैं कि विवेक खोकर हत्या तक कर देते हैं। इसी प्रकार 'रोड रेज' के अंतर्गत मारपीट करने या शीशे तोड़ने वाले वाहन चालक आम आदमी ही होते हैं, लेकिन अधैर्य, उग्रता व उत्तेजना के वशीभूत होकर गुंडों- मवालियों के समान व्यवहार करने लगते हैं। मानव में निरंतर बढ़ रही असहनशीलता व अहं की प्रचंडता के कारण मामूली बातों पर उत्पात होने लगते हैं।

आज देश के बुद्धिजीवी, साहित्यकार व समाजशास्त्री परेशान हैं कि आदमी इतना हिंस्र व उग्र क्यों होता जा रहा है? सब अपने-अपने ढंग से इसका निदान कर रहे हैं। संभवतया मानव की इस दारुण दशा के लिए सर्वाधिक जिम्मेदार है परिवारिक मूल्यों का ह्रास व संस्कारहीनता। भौतिकतावाद के ज्वार व बाजारवाद के अंधड़ में जीवन मूल्य त्रस्त खड़े हैं। आज माँ-बाप अत्यधिक लालसाओं व असंयम के वशीभूत होकर बच्चों के समक्ष अनुकरणीय 'रोल मॉडल' नहीं बन पाते। उसे सही मार्ग दिखाने के लिए पारिवारिक परिवेश को परिष्कृत व संस्कारित करना जरूरी है।

MV_January 2019 final for printing:Layout 1 1/16/2019 5:43 PM Page 6

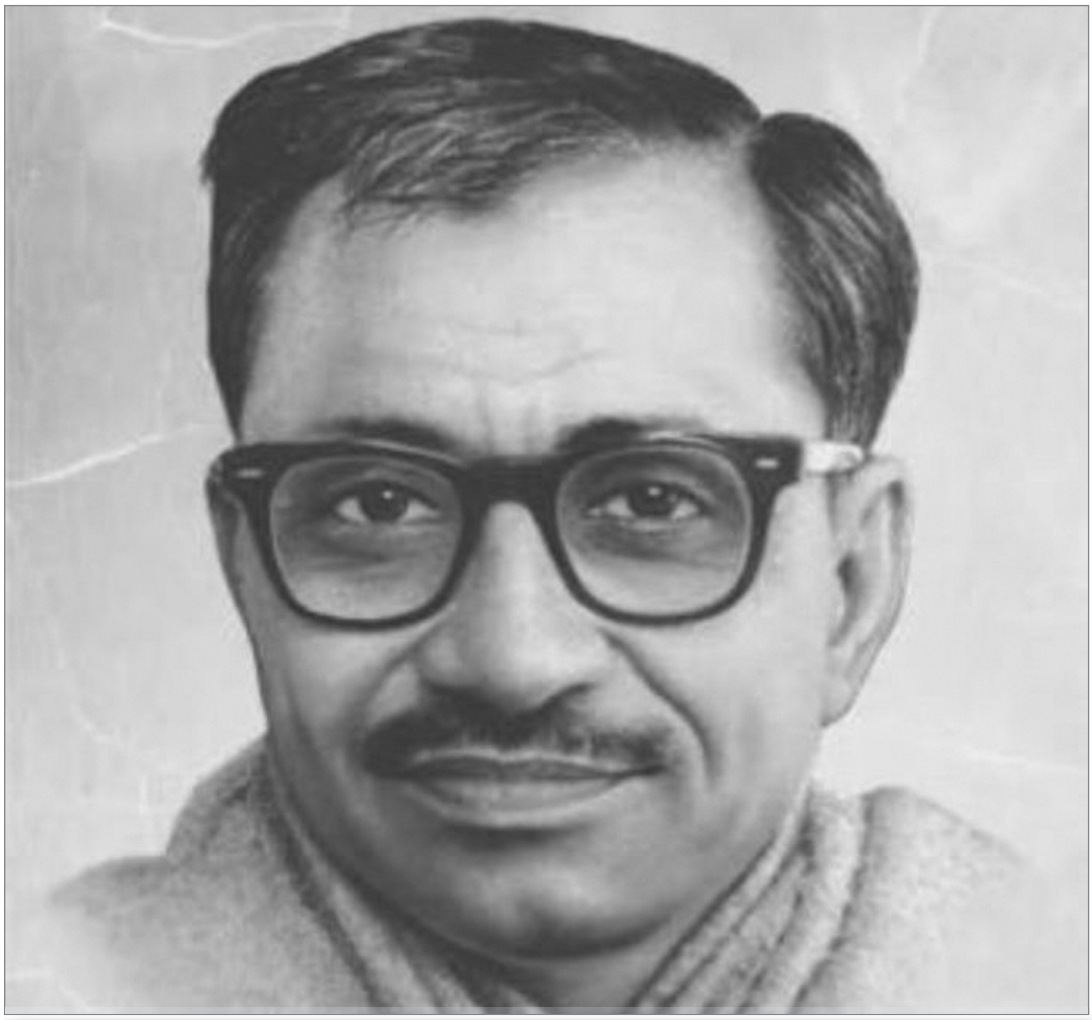

वर्तमान भारतीय राजनीतिक संदर्भ में 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' की चर्चा होती है। वहीं इसके विपरीत एक वर्ग 'आधुनिक व वैज्ञानिक सेक्यूलरवाद' की पैरवी करता है। प्रायः समान्य भारतीय इन दोनों धाराओं के मौलिक अंतर को समझ ही नहीं पाते। वहीं राजनीति के विद्वान अध्येता भी इन दो धाराओं की व्याख्या करते समय इनके मूलभूत अंतर का सटीक विश्लेषण नहीं कर पाते। यही कारण है कि इन दो धाराओं के विवाद को केवल सत्ता संघर्ष के रूप में देखा जाता है। इन दो धाराओं के संघर्ष का इतिहास सैंकडों वर्ष पुराना है, इसके मूल में है भारत-भू को अपनी मातृभूमि मानते हुए, इसे एक जीवंत सांस्कृतिक राष्ट्रीय इकाई के रूप में 'परम वैभव' के शिखर पर पहुँचाने की भावना। वहीं दूसरी ओर है भारत को केवल एक विजित भू-भाग मानकर उस पर अनंत काल तक शासन करने की लालसा। राजनीति की इन दो धाराओं की मूल प्रवृत्ति को क्रमशः 'राष्ट्रोन्मुख' व 'राजोन्मुख' बताते हुए दोनों के मौलिक भेद की व्याख्या कर विद्वान लेखक *प्रमोद कुमार दुबे* स्पष्ट कर रहे हैं कि राष्ट्रोन्मुख धारा ही क्यों भारतीय जनमानस के अनुकूल है।

MV_January 2019 final for printing:Layout 1 1/16/2019 5:43 PM Page 7

डॉ. प्रमोद कुमार दुबे

समकालीन राजनीतिक प्रवृत्तियाँ और पं. दीनदयाल उपाध्याय

भारत के समकालीन इतिहास में दो प्रमुख राजनीतिक प्रवृत्तियाँ सक्रिय दिखाई देती हैं– एक सतत संघर्षशील राष्ट्रोन्मुख प्रवृत्ति और दूसरी पराधीनता की गोद में पली-बढ़ी और स्वाधीनता के बाद पूर्व शासकों की तरह सत्ता पर सवार रहनेवाली राजोन्मुख प्रवृत्ति ।

यदि अद्यतन संदर्भ में राष्ट्रोन्मुख प्रवृत्ति के किसी एक प्रतिनिधि व्यक्तित्व को उदाहरण स्वरूप देखना हो– जिसने धर्म, संस्कृति, दर्शन, भाषा, साहित्य, शिक्षा, समाज, राजनीति, अर्थनीति और इतिहास दृष्टि आदि विषयों के लिए राष्ट्रधर्मी विचारों का मार्ग बनाया हो व राष्ट्र के नवनिर्माण की दिशा में सनातन ज्ञानधारा की लोकोपयोगी सामयिक व्याख्या दी हो तो वह प्रतिनिधि व्यक्तित्व होंगे– पं. दीनदयाल उपाध्याय।

दीनदयालजी व्यक्ति नहीं, सनातन विचार गंगा का सतत प्रवाह हैं। उन्होंने भी आधुनिक युग के लिए वही कार्य किया जो उनके पहले के युगद्रष्टा मनीषियों ने किया, इस कार्य को हम 'आप्त ज्ञान का अद्यतन विनियोग' कह सकते हैं। यह ऋषि कार्य है। समय के समानांतर सनातन ज्ञानधारा भी परिवर्धित होती रहती है। युगानुरूप निरंतरता को दीनदयाल जी ने राष्ट्र के सनातन अस्तित्व के लिए अनिवार्य बताया, उन्होंने कहा है- ''हमारे यहाँ माना गया है कि आत्मा का पुनर्जन्म होता है, परंतु पुनर्जन्म लेनेवाले तथा इस व्यक्ति में अंतर रहता है। दोनों को हम अलग-अलग मानते हैं। पुनर्जन्म उसी व्यक्ति का होता होगा, परंतु जनमा व्यक्ति दूसरा होता है। 'उन्होंने राष्ट्र के सनातन अस्तित्व की व्याख्या देते हुए परिवर्तनशील शरीर और अपरिवर्तनशील आत्मा का उदाहरण दिया है। उनका कथन है कि

MV_January 2019 final for printing:Layout 1 1/16/2019 5:44 PM Page 8

''हजारों वर्ष में जो कुछ हमने किया है, वह विवशता में हमें मिला हो या प्रयास पूर्वक हमने मिलाया हो, उसमें से हर वस्तु को हटा करके नहीं चल सकते।'' दीनदयाल जी सनातन ज्ञान के मर्म को जानते हैं, उनकी स्पष्ट धारणा है कि नवीनतम चिंतन और सृजन के लिए सनातन ज्ञान धारा पूर्णतः सहयोगी है, इसी आधार पर वे पूर्व राष्ट्रनिष्ठ विचारकों का अनुसरण करते हैं, युगानुरूप विचारों की स्थापना करते हैं और देश के निर्माण की दिशा निर्णीत करते हैं।

दीनदयाल जी ने कहा है कि ''स्वराज्य के बाद हमारा रूप क्या होगा, हम किस दिशा में आगे बढ़ेंगे? इसका बहुत कुछ विचार नहीं हुआ था। 'बहुत कुछ' शब्द का मैंने प्रयोग इसलिए किया है कि बिलकुल विचार नहीं हुआ था, यह कहना ठीक नहीं होगा। ऐसे लोग थे जिन्होंने उस समय भी बहुत-सी बातों पर विचार किया था। स्वयं गांधीजी ने हिंद स्वराज्य लिखकर उसमें स्वराज्य आने के बाद भारत का चित्र क्या होगा– इस पर अपने विचार रखे थे। उसके पहले लोकमान्य तिलक ने भी गीता रहस्य लिखकर संपूर्ण आंदोलन के पीछे की तात्त्विक भूमिका क्या होगी– इसका विवेचन किया था। साथ ही उस समय विश्व में जो भिन्न-भिन्न विचार सारणियाँ चल रहीं थीं, उनकी तुलनात्मक दृष्टि से आलोचना की थी।'' इन्हीं राष्ट्रोन्मुख विचार गंगा के सतत प्रवाह को अविरल बनाकर देश की दिशा निर्णीत करने में दीनदयाल जी का महत्त्वपूर्ण योगदान है।

कहना उचित होगा कि दीनदयाल जी राष्ट्रोन्मुख प्रवृत्ति के अग्रणी दिग्दर्शक तेजपुंज हैं। उन्होंने भारत के स्वाधीन स्वरूप के सृजन की अविराम तपस्या की, हजारों वर्ष से सतत प्रवाहमान भारतीय ज्ञान परंपरा की समय सापेक्ष व्याख्या दी, राष्ट्रीय समस्याओं के निराकरण के लिए दार्शनिक मानदंडों को व्यवहार सुलभ बनाया। इतना ही नहीं, वैचारिक समर में जूझते हुए उन्होंने जिन युगापेक्षित धारणाओं को राष्ट्र के लिए आविर्भूत किया, उन धारणाओं को राजनीति के मंच पर साकार करके दिखा दिया।

दीनदयाल जी राष्ट्रोन्मुख प्रवृत्ति के अग्रणी दिग्दर्शक तेजपुंज हैं। उन्होंने भारत के स्वाधीन स्वरूप के सृजन की अविराम तपस्या की, हजारों वर्ष से सतत प्रवाहमान भारतीय ज्ञान परंपरा की समय सापेक्ष व्याख्या दी, राष्ट्रीय समस्याओं के निराकरण के लिए दार्शनिक मानदंडों को व्यवहार सुलभ बनाया।

विरोधियों को यह लग चुका था कि दीनदयाल जी आधुनिक राजनीति को भारतीय विचारों से संस्कारित और परिवर्धित कर रहे हैं, उनके कार्यों से भविष्य में भारत की सतत संघर्षशील सांस्कृतिक धारा राजनीति को नियंत्रित कर सकती है, आधुनिक राजनीति से पश्चिमी कलई उतर सकती है। इस संभावना से देश के शत्रु बिलबिला उठे और तब-यह सच है कि शत्रुओं ने दीनदयाल जी के भौतिक शरीर का अंत कर दिया, लेकिन यह भी अकाट्य सत्य है कि प्रलय काल भी दीनदयाल जैसी दिव्य राष्ट्रात्माओं के शिव संकल्प का अंत नहीं करता। कहना अनावश्यक नहीं कि उनकी अमर यशः काया सनातन राष्ट्र जीवन का चिर पथ प्रदर्शक बन चुकी है।

''आज राजनीति साधन नहीं रह गई है, वह स्वयं साध्य बन गई है। आज हमारे बीच ऐसे लोग विद्यमान हैं जो निश्चित सामाजिक और राष्ट्रीय उद्देश्यों की पूर्ति करने की दृष्टि से राजनीतिक सत्ता पर ध्यान देने की अपेक्षा केवल सत्ता के लिए अधिक व्यस्त हैं।'' पोलिटिकल डायरी (पृ. सं.- 188) से उद्धृत

MV_January 2019 final for printing:Layout 1 1/16/2019 5:44 PM Page 9

दीनदयाल जी के इस विचार के आलोक में आज के राजनीतिक परिदृश्य की समीक्षा करनी चाहिए, जानने का प्रयास करना चाहिए कि राष्ट्रोन्मुख प्रवृत्ति और राजोन्मुख प्रवृत्ति की वस्तुस्थिति क्या है?

यह घोषित सत्य है कि जब तक राजोन्मुखी प्रवृत्ति राष्ट्रोन्मुख प्रवृत्ति का अनुसरण नहीं करती, उसकी विश्वसनीयता स्थापित नहीं रहती। राष्ट्र-धारणा से रहित राजोन्मुख प्रवृत्ति बिना मेरुदण्ड की केवल महत्त्वाकांक्षा है–किसी प्रकार सत्ता पर सवार होकर सुख-भोग की महत्त्वाकांक्षा। लेकिन, विगत् शताब्दियों के इतिहास में इसी प्रवृत्ति को खाद-पानी और उपजने का अवसर मिला। मुगलकालीन राज्यव्यवस्था में किस तरह के लोग आगे बढ़ाए जा रहे थे? अकबर कालीन संत महाकवि तुलसी बाबा ने बताया है–'बबूर बहेड़न के लगायी बाग, काटत हैं सुर तरुअन को रुधबे को।' बाड़े बनाने के लिए सुरतरु काटे जा रहे थे और बबूल-बहेड़ा के बाग लगाए जा रहे थे, अर्थात् तुलसी के युग की राज्य व्यवस्था शोषण और दमन के लिए जालिम लोगों को पदासीन करती थी, साथ ही उनके अत्याचारों को ढकने के लिए समाज में अपने सुकृत्यों से प्रतिष्ठित हुए लोगों को आगे रखा जाता था।

जब तक राजोन्मुख प्रवृत्ति राष्ट्रोन्मुख प्रवृत्ति का अनुसरण नहीं करती, उसकी विश्वसनीयता स्थापित नहीं रहती। राष्ट्र-धारणा से रहित राजोन्मुख प्रवृत्ति बिना मेरुदण्ड की केवल महत्त्वाकांक्षा है-किसी प्रकार सत्ता पर सवार होकर सुख-भोग की महत्त्वाकांक्षा। विगत् शताब्दियों में इसी प्रवृत्ति को खाद-पानी और उपजने का अवसर मिला।

आधुनिक भारतीय राजनीति की विकास यात्रा में स्वाधीनता संघर्ष के इतिहास पर दृष्टिपात करें तो स्पष्ट दिखाई देगा कि अँग्रेजों ने राजोन्मुख प्रवृत्ति को विशेष प्रश्रय दिया और राष्ट्रोन्मुख प्रवृत्ति को कुचला, रोका या उपेक्षित किया– उदाहरण के लिए हम दो राजनीतिक व्यक्तित्वों को ले सकते हैं, एक पं. मदनमोहन मालवीय और दूसरे मोतीलाल नेहरू को। मालवीय जी की राष्ट्रचेतना राजनीति अंततः भारत के भविष्य निर्माण के लिए समर्पित होकर रह गई, क्योंकि वह अँग्रेजपरस्त नहीं हो सकी। उनकी राजनीति की प्रेरणा राष्ट्रभक्ति थी। लेकिन मोतीलाल नेहरू की राजनीति कांग्रेस में अँग्रेज की प्रेरणा से सक्रिय हुई थी, इसलिए मोतीलाल नेहरू सफल हुए। उनके पुत्र जवाहरलाल नेहरू देश के प्रथम प्रधानमंत्री बनाए गए। कांग्रेस की राजनीति में तथाकथित उदारवाद के लिए जगह थी, लेकिन राष्ट्रवाद के लिए नहीं।

आरंभ से ही भारतीय जनतंत्र पर पश्चिमी राज्यव्यवस्था का प्रभाव पड़ा, जिससे राष्ट्र की सतत संघर्षरत सांस्कृतिक शक्ति के बदले राज्यव्यवस्था को ही सर्वोपरि होने का अवसर मिला, इसलिए भारतीय राजनीति में सिद्धांतहीन पद लोलुपता को प्रोत्साहन का अवसर मिला। निश्चय ही राष्ट्रोन्मुख प्रवृत्ति के मानदंड पर यह दोष रेखांकित होता है। फिर भी जहाँ राजोन्मुख प्रवृत्ति ही सर्वोपरि हो, राजशक्ति ही सर्वोच्च हो, वहाँ सिद्धांतहीनता का दोष कैसे उजागर हो सकता है? इसलिए राजनीतिक सफलता प्राप्ति के कला-कौशल को भी स्थान देना चाहिए, उसका उपहास नहीं करना चाहिए, बल्कि इस कला कौशल को जानकर उसका उपयोग राष्ट्रोन्मुख प्रवृत्ति के संवर्धन में करना चाहिए। विडंबना यह है कि राष्ट्रनिष्ठ राजनीति की दृष्टि से जो सिद्धांतहीनता है, राजोन्मुख राजनीति की दृष्टि से उसी में सफलता का सिद्धांत भी निहित है। राजनीति में भारतीय दृष्टि ने कभी व्यावहारिक ज्ञान की उपेक्षा नहीं की, उसे ग्रहण किया और अपने अनुकूल बनाया।

MV_January 2019 final for printing:Layout 1 1/16/2019 5:44 PM Page 10

हम जिन आचार्य कौटिल्य का नाम बड़े आदर से लेते हैं, उनके विचारों में उनके पूर्व के विचारों के लिए स्थान है, विश्लेषण और अन्वेष है, लेकिन ठहराव नहीं। कौटिल्य ने पूर्व आचार्यों के विचारों को ग्रहण किया है, विश्लेषण किया है और नवीन का अन्वेषण भी। उन्होंने मनु, बृहस्पति और शुक्राचार्य की राज विद्याओं का उल्लेख किया है। उन्होंने बताया है कि मनु के विचार संप्रदाय में त्रयी, वार्ता और दंडनीति तीनों को स्थान दिया जाता था, इस संप्रदाय में आन्वीक्षकी त्रयी के साथ समाहित थी। बृहस्पति का संप्रदाय त्रयी को महत्त्व नहीं देता था, वह वार्ता और दंडनीति पर जोर देता था, इसी तरह शुक्राचार्य का संप्रदाय त्रयी और वार्त्ता की उपेक्षा करता था, वह केवल दंडनीति को ही महत्त्व देता था। कौटिल्य ने आन्वीक्षकी को त्रयी से अलग स्थापित किया। आन्वीक्षकी में सांख्य, योग और लोकायत को स्थान दिया। उन्होंने त्रयी में धर्माधर्म, वार्ता में अर्थानर्थ और दण्डनीति में शासन-दुःशासन का विवेकपूर्ण निर्णय अनिवार्य मानकर घोषित किया कि यह आन्वीक्षकी लोक का उपकार करेगी- 'आन्वीक्षकी लोकस्योपकारोति'।

अर्थशास्त्र की इन शब्दावलियाँ के अभिप्राय, व्याख्या और प्रयोग में निहित राजशास्त्र विशेष अध्ययन का क्षेत्र है, लेकिन इस चर्चा से स्पष्ट होता है कि राजतंत्र के युग में भी सिद्धांतहीन राजनीति नहीं होती थी, राज्यव्यवस्था लोकहित को समर्पित थी और उसमें समयानुकूल परिवर्तन किया जाता था। आधुनिक राजनीति में केवल राजभोग की आकांक्षा, लूट-छूट में हिस्सेदारी और तोड़-जोड़, दाव-पेंच में ही राजनीति की वास्तविक सफलता की कुँजी नहीं मानी जा सकती।

स्वाधीन भारत में भी पुराने राजकाज के तरीकों को अपना कर या कहें कि अँग्रेज की परछाई ओढ़ कर राजोन्मुख प्रवृत्ति ने परंपरा की निंदा के गीत गाते हुए राष्ट्रघात के मार्ग पर कदम बढ़ाया। ऐसी राजनीति के सत्तासीन रहने से पराधीनताकारी शक्तियों को कोई समस्या नहीं हुई और न मार्क्समार्गियों को ही बाधा महसूस हुई। राजोन्मुख प्रवृत्ति को पूर्व सत्तासीनों से राज करने की जमी-जमाई पद्धति मिली। इस तथ्य को स्पष्ट करने के लिए सवाल उठाया जा सकता है कि स्वाधीन भारत में गुलामी के दिनों के कानूनों की जरूरत क्या है? क्या यही स्वाधीनता है? नहीं, यह स्वाधीनता के पर्दे में छिपकर रहने वाली पराधीनता है। स्वाधीनता मिल गई, तब पराधीनता के पेंच क्यों रखे गए? स्वाधीन भारत में आज सत्तर वर्ष बाद भी सत्ता, शासन, शिक्षा संबंधी अनेक सवाल हैं, जिनके जवाब भारत राष्ट्र की सांस्कृतिक अस्मिता माँग रही है।

स्वाधीन भारत में गुलामी के दिनों के कानूनों की जरूरत क्या है? क्या यही स्वाधीनता है? नहीं, यह स्वाधीनता के पर्दे में छिपकर रहने वाली पराधीनता है। स्वाधीनता मिल गई, तब पराधीनता के पेंच क्यों रखे गए? स्वाधीन भारत में आज सत्तर वर्ष बाद भी सत्ता, शासन, शिक्षा संबंधी अनेक सवाल हैं, जिनके जवाब भारत की सांस्कृतिक अस्मिता माँग रही है।

इस संभावना को नकारा नहीं जा सकता कि यदि राष्ट्रोन्मुख प्रवृत्ति की सशक्त भूमिका हो और उससे लाभ की आशा हो, तब राजोन्मुख प्रवृत्ति भी राष्ट्रनिष्ठा का गाना गा सकती है, क्योंकि इस प्रवृत्ति का प्रमुख ध्येय राजसत्ता होती है, यह सत्ता के लिए कोई भी समझौता कर सकती है, यह प्रवृत्ति राष्ट्रोन्मुख प्रवृत्ति की तुलना में काल की छोटी चौखट में समा सकती है, यह अधिक परिवर्तनशील है, इसलिए कहना होगा कि राष्ट्र जीवन में राष्ट्रोन्मुख प्रवृत्ति ही प्रधान होती है, इसे

MV_January 2019 final for printing:Layout 1 1/16/2019 5:44 PM Page 11

ही सशक्त और प्रखर बनाना चाहिए। इसका सर्वोपरि लक्ष्य केवल सत्ता की सवारी नहीं, अपितु सांस्कृतिक परंपरा और वास्तविक इतिहास की आधारशिला पर पूर्ण स्वाधीन, सबल और समृद्ध राष्ट्र का निर्माण है। इसका अर्थ यह नहीं है कि राष्ट्रोन्मुख प्रवृत्ति राजसत्ता से निरपेक्ष और अनुत्तरदायी रह सकती है, उसे अपने राष्ट्रीय कार्यों को मूर्तरूप देने के लिए अनुकूल राजसत्ता की अवश्यकता पड़ती है। सुयोग्य राजोन्मुख प्रवृत्ति वही हो सकती है जो राष्ट्रोन्मुख प्रवृत्ति का अनुसरण करे।

राजसत्ता तक सीमित सोच रखनेवाले लोगों ने भारत की सांस्कृतिक शक्ति धारा को अवरुद्ध करने का निरंतर प्रयास किया और परोक्ष पराधीनता बनाए रखने में ही सत्ता भोग का आसान रास्ता देखा। उनकी तथाकथित उदारता यह मानती रही कि भारत की एकता-अखंडता के लिए पश्चिमी इतिहास दृष्टि और आधुनिक वैज्ञानिक विचार ही कारगर है। भारत की अखंडता पश्चिमी नजर से ही रक्षित हो सकती है, इस कार्य में अँग्रेज की आर्य आगमन परिकल्पना उचित भूमिका निभाती है। इस परिकल्पना के अनुसार भारत आगंतुकों का देश है, यहाँ विविध संस्कृतियाँ बाहर से आई हैं। भारत की सभी संस्कृतियों में बहुत अंतर है। ऐसे सराय सरीखे देश पर किसी एक सांस्कृतिक परंपरा का दावा नहीं हो सकता। इसी प्रकार यहाँ के धर्मों में भी भारी भेद हैं। इनमें एकता की कल्पना नहीं की जा सकती। इनमें किसी एक विचार पर सहमति और एकता नहीं हो सकती है,और यदि कोई विकल्प हो सकता है, तो वह है– आधुनिक वैज्ञानिक सेक्यूलर विचार। इन्हीं विचारों को राज्य व्यवस्था के लिए सहायक मानकर शिक्षा और संचार माध्यमों इत्यादि में स्थापित रखा गया। इसे ही एकमात्र अंतर्राष्ट्रीय विकल्प बताया गया। यह माना गया कि भारत कोई राष्ट्र नहीं था, इसकी अपनी कोई व्यवस्था न थी, न है और न होगी।

भारत के विषय में जॉन स्ट्राची 1888 में यही विचार प्रचारित किया करता था, इस विचार की विष लताएँ स्वाधीनता के बाद की शिक्षा और साहित्य के वादों-विमर्शों में ही नहीं, तथाकथित क्रांतिकारी संगठनों में भी फैल गई हैं, जो 'राष्ट्र' शब्द के उच्चारण मात्र से फुफकार मारती हैं। बहुत विचित्र लगता है कि जिन्हें स्वाधीनता आंदोलन में अपने योगदान का मूल्य चाहिए, उनके मानस में न भारत राष्ट्र का चित्र है और न भारतमाता के प्रति श्रद्धा। वे लोग भारत की सराय सरीखी पहचान रचने वाले साम्राज्यवादी अँग्रेज के विचारों को अपनाते हैं और साम्राज्यवाद के विरोध का नाटक करते हैं।

राष्ट्र जीवन में राष्ट्रोन्मुख प्रवृत्ति ही प्रधान होती है। इसका सर्वोपरि लक्ष्य सांस्कृतिक परंपरा और वास्तविक इतिहास की आधारशिला पर पूर्ण स्वाधीन, सबल और समृद्ध राष्ट्र का निर्माण है। इसका अर्थ यह नहीं है कि राष्ट्रोन्मुख प्रवृत्ति राजसत्ता से निरपेक्ष रह सकती है, उसे राष्ट्रीय कार्यों को मूर्तरूप देने के लिए अनुकूल राजसत्ता की अवश्यकता पड़ती है।

स्वाधीन भारत को एक ओर ब्रिटेन अपने उपनिवेश की परिभाषा और पहचान में रखना चाहता रहा, दूसरी ओर रूसी क्रांति की सफलता के बाद सोवियत रूस की गिद्ध दृष्टि भारत के स्वाधीनता संघर्ष से लेकर इसके नवनिर्माण तक में लगी रही। वह भारत को मार्क्सवाद के रंग में रंगने के लिए अपने वैचारिक नेतृत्व का विस्तार करता रहा, तीसरी ओर अमेरिका भी भारत को अपने वैश्विक वर्चस्व के घेरे में समेटता रहा। इन प्रयासों में फैलाए गए जाल से भारत आज भी मुक्त नहीं है। यह कथन भ्रामक है कि अब कहाँ मार्क्सवाद रहा, क्या नक्सल-माओ, अलगाव-आतंक उसके अंडे-

MV_January 2019 final for printing:Layout 1 1/16/2019 5:44 PM Page 12

बच्चे नहीं हैं, क्या इनकी जड़ें उस जमीन में नहीं है जिसे कांग्रेस ने दी थी? स्वाधीन भारत की बागडोर संभालने के बाद कांग्रेस दिशाहीनता के चौराहे पर खड़ी थी, क्योंकि उसकी नकेल परोक्षतः अँग्रेज के हाथों में थी, वह भारत की सनातन अस्मिता के मार्ग पर चल नहीं सकती थी, उसके सामने प्रश्न था कि वह जाए तो किधर जाए? क्या वह अँग्रेजी तर्ज पर गाना गाती रहेगी या सोवियत रूस की ताल पर पद संचरण करेगी या अमेरिकी साजों पर कोई धुन बजाएगी? वास्तव में कांग्रेस के लिए यह कोई समस्या नहीं थी और न वह किसी चौराहे पर खड़ी थी, वह तो स्वयं चौराहा थी, विविध विचारों की एक बटोर, एक मंच की तरह।

दीनदयाल जी ने स्वाधीनता पूर्व की राजनीतिक स्थिति के विषय में बताया है कि ''सबके सामने प्रमुख प्रश्न यही था कि पहले हम अँग्रेजों को निकालें, फिर अपने घर का निर्माण कैसे करेंगे, इसका विचार कर लेंगे। इसलिए विचारों के मतभेद भी कहीं थे तो लोगों ने उसे दबाकर रखा था, यहाँ तक कि समाजवाद के आधार पर आगे का भारत बनना चाहिए, इस तरह का विचार करने वाले जो लोग थे, वे कांग्रेस के अंदर ही एक सोशलिस्ट पार्टी बनाकर काम करते रहे। उससे बाहर निकल कर उन्होंने अलग से काम करने का प्रयत्न नहीं किया। क्रांतिकारी भी अपने-अपने विचारों के अनुसार स्वराज्य के लिए कार्य करते थे। इस प्रकार और भी लोग थे, किंतु प्रमुखता इसी बात की रही कि पहले देश को स्वतंत्र कर लिया जाए।'' देश स्वतंत्र हो गया, स्वतंत्रता पाने का प्रकरण पूरा हुआ और स्वतंत्रता खाने का प्रकरण आरंभ हुआ।

दीनदयाल जी का कथन है– 'देश स्वतंत्र होने के बाद स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न हम सब लोगों के सामने आना चाहिए था कि अब हमारे देश की दशा क्या होगी? किंतु सबसे बड़ा आश्चर्य यह है कि देश की स्वतंत्रता के बाद भी, जितने गंभीर रूप से इस प्रश्न पर विचार करना चाहिए था, उतने गंभीर रूप से विचार नहीं किया और आज भी जब सोलह-सत्रह वर्ष, देश को स्वतंत्र हुए हो गए, हम नहीं कह सकते कि कोई दिशा निश्चित हो गई है।'' देश की दिशाहीनता की यह चिंता स्वतंत्रता के डेढ़ दशक बीत जाने के बाद की है, आज सत्तर वर्ष बीत चुके हैं, फिर भी देश की दिशा सुनिश्चित करने की चिंता में सब की सहभागिता नहीं है, कुछ लोगों की देह ही देश है, कुछ का वंश ही देश है, कुछ लोगों के लिए देश नहीं, सिर्फ राज्य है, कुछ लोगों के लिए राज्य या देश भी नहीं है, केवल दुनिया है, उन्हें देश, राष्ट्र या नेशन का नाम सुनकर संताप होता है।

'देश स्वतंत्र होने के बाद स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न हम सब लोगों के सामने आना चाहिए था कि अब हमारे देश की दशा क्या होगी? किंतु सबसे बड़ा आश्चर्य यह है कि देश की स्वतंत्रता के बाद भी, जितने गंभीर रूप से इस प्रश्न पर विचार करना चाहिए था, उतने गंभीर रूप से विचार नहीं किया।' - पं. दीनदयाल उपाध्याय

आधुनिक सेक्यूलर विचार के कम्यूनिस्ट 'नेशन' को ठीक नहीं मानते, वे भी अँग्रेज की तरह भारत को सराय सरीखा देखते-दिखाते हैं। स्पष्ट है कि इससे पाकिस्तान और चीन को भी भारत पर आक्रमण के लिए उत्साह मिलता होगा। विविध प्रकार के इन राजोन्मुख प्रवृत्तियों और अनेक राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय प्रभावों, दबावों और अवरोधों के बीच सतत संघर्षशील राष्ट्रोन्मुख प्रवृत्ति कार्य करती रही है, यह प्रवृत्ति भारत के स्वभाव और स्वरूप की स्थापना के लिए निरंतर प्रयास किया करती है। आज भी हमारे देश में विरोधी

MV_January 2019 final for printing:Layout 1 1/16/2019 5:44 PM Page 13

विचार कार्यरत हैं।

राष्ट्रोन्मुख प्रवृत्ति के दमन में प्रमुखता मार्क्सवादी राजोन्मुख प्रवृत्ति के अनेक संगठन कार्य करते हैं। रणनीतिक दृष्टि से ये लोग अँग्रेजी साम्राज्य की रीति-नीति को पुराने बैरक की तरह इस्तेमाल करते रहे और अपनी गोलाबारी से भारत के स्वरूप को बदरूप बनाते रहे। पूँजीवादी अँग्रेज और गैरपूँजीवादी मार्क्सवादियों में विचित्र संबंध दिखाई देता है, यथा-अँग्रेज ने भारत के पारंपरिक उद्यम और व्यापार की जड़ें काटी, भारत के लोग भूख से मरने लगे, अँग्रेज ने फैक्ट्रियाँ खड़ी की; भारत के लोग मजदूर हुए। इसके बाद इंग्लैंड से ही भारत में मार्क्सवादी ट्रेड यूनियन आई, उसने फैक्ट्रियों में हड़ताल और तालाबंदी करवाई, भारत के लोग भूख से मरने लगे।

यह नहीं भूलना चाहिए कि पराधीनता काल के शोषण से ही मार्क्सवादी आंदोलन की जमीन तैयार हुई है। लगान की वसूली के लिए अँग्रेज ने जिस जमींदारी प्रथा को मजबूत किया उसकी बुनियाद बाबर ने रखी थी। बाबर के जमाने में पहली बार भूमि की बंदोबस्ती शुरू हुई। पट्टा, रसीद, खाता, खतियान के धंधे, जमींदारी और जागीरदारी की प्रथा मुगल काल की देन है। भूमि को बाधित करने वाली इस व्यवस्था के विरुद्ध संतों ने आवाज उठाई और कहा था–'सबै भूमि गोपाल की।' इसी क्रूर शोषण के तंत्र के विरुद्ध तुलसी बाबा की आवाज सुनिए–'भूमि चोर भूप भए। वेद धरम दूर गए।' इस विरोध से संतों पर मुगल ही नाराज नहीं हुए, बल्कि उनके साथ पट्टा, रसीद, खाता, खतियान के धंधों से कमाई करनेवाले लोग भी नाराज हुए। वास्तव में मुगलों-अँग्रेजों के काले कारनामों से भारतीय समाज में उत्पन्न हुई विकृतियों का ठीकरा धार्मिक सांस्कृतिक परंपरा के सिर पर फोड़ना गलत है।

हमें साफ समझ लेना चाहिए कि निर्धनता, भुखमरी और सामाजिक विकृतियाँ पराधीनता का क्लेश हैं, सर्वसंपन्न भारत की पारंपरिक व्यवस्था का निजी यथार्थ नहीं। यह समस्या जरूर है कि भारत के वास्तविक तथ्यों से नजरें मिलाकर मार्क्सवादी लोग शोषक-शोषित का वर्गभेद खड़ा नहीं कर सकते हैं? वर्ग संघर्षी लोगों के लिए एक रास्ता यह हो सकता है कि भारत की आमूल -चूल निंदा छोड़कर अँग्रेज का पीछा करें और कम से कम इतना तो जरूर बोलें- बताएँ कि 1779 ई. तक भारत के गाँव-गाँव में शिक्षा थी, लेकिन अँग्रेजी राज के डेढ़ सौ साल गुजरने के बाद 1929 ई. में 93 प्रतिशत भारतीय अशिक्षा के अँधकार में डूब गए। यह तथ्य सुंदरलाल की प्रसिद्ध पुस्तक 'अँग्रेजी राज' (पृ. 104, खं.-1, सं.1960) में प्राप्त हो जाएगा। इन तथ्यों के लिए गांधीवादी विचारक धर्मपाल की पुस्तकें देखी जा सकती हैं।

आधुनिक सेक्यूलर विचार के कम्यूनिस्ट 'नेशन' को ठीक नहीं मानते, वे भी अँग्रेज की तरह भारत को सराय सरीखा देखते हैं। रणनीतिक दृष्टि से ये लोग अँग्रेजी साम्राज्य की रीति-नीति को पुराने बैरक की तरह इस्तेमाल करते रहे और अपनी गोलाबारी से भारत के स्वरूप को बदरूप बनाते रहे।

आर्थिक विषयों की तरह बौद्धिक विषयों में भी मार्क्समार्गियों ने अँग्रेज का अनुसरण किया, यथा अँग्रेज ने बताया-आर्य भारत में बाहर से आए, कुछ अन्य जातियाँ भी आई, जैसे अर्मेनिया से कृष्ण भक्ति लेकर आभीर आए। पादरियों ने हिंदू समाज की कुरीतियों का सुधार किया, आक्रांताओं के महान् योगदान से भारत की सभ्यता-संस्कृति में चार चाँद लगे, वास्को डि-गामा ने भारत की खोज की, उसके बाद ही यह देश आगे बढ़ा।

भारत में सूई तक नहीं बनती थी, अँग्रेज की कृपा से सब चीजें उपलब्ध होने लगीं। अँग्रेज ने अज्ञान में डूबे भारत का उद्धार कर दिया। भारत कोई राष्ट्र नहीं, एक उपमहाद्वीप है। इस तरह के अँग्रेज प्रसूत बहुतेरे ज्ञानों की विरासत मार्क्सवादी लोग आधुनिकता की फटी गठरी में बाँधकर ढोते आ रहे हैं और 'फूट डालो-राज करो' नामक अँग्रेज नीति की तरह वर्ग-भेद, वर्ग - संघर्ष के लिए किस्म-किस्म विघटनकारी विमर्श की रचना करते रहे हैं, जिनकी बुनियाद में मैक्समूलर, मैक्डोनल, गोल्ड स्टाकर, लसेन, वोल्डलिक, कीथ, रुडाल्फ इत्यादि अँग्रेज की पलटन के कार्य हैं, जिस पलटन ने कात्यायन स्रोत सूत्र आदि भारतीय शास्त्रों की विकृत प्रस्तुति से कभी पादरी मंसूबे को सफल करने के लिए कार्य किया था।

आर्थिक विषयों की तरह बौद्धिक विषयों में भी मार्क्समार्गियों ने अँग्रेज का अनुसरण किया, यथा अँग्रेज ने बताया-आर्य भारत में बाहर से आए। भारत कोई राष्ट्र नहीं, एक उपमहाद्वीप है। इस तरह के अँग्रेज प्रसूत बहुतेरे ज्ञानों की विरासत मार्क्सवादी लोग आधुनिकता की फटी गठरी में बाँधकर ढ़ोते आ रहे हैं।

वास्तविक तथ्यों से दूर मार्क्सवादियों ने भ्रामक कथनों से दुष्प्रचार के जुमले बनाए। जवाहरलाल नेहरू की पुस्तक- 'भारत की खोज' और नेहरू के ही प्रभाव में लिखित रामधारी सिंह दिनकर की पुस्तक- 'संस्कृति के चार अध्याय' से भी भारत राष्ट्र की समग्र एकात्म संस्कृति के बदले सामासिक संस्कृति अर्थात मिलीजुली संस्कृति स्थापित की गई, जो मुख्यतः राजोन्मुख प्रवृत्ति की प्रेरणा से रची गई थी। इनसे एकता में नहीं, अनेकता में सांस्कृतिक अस्मिताएँ पोषित हुईं, जो भारत की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में मार्क्सवाद के लिए जन और अभिजन संस्कृतियों के वर्ग भेद बनाने में सहायक हुई। इस प्रकार राजोन्मुख प्रवृत्ति ने भारत की एकात्म सांस्कृतिक अस्मिता, ज्ञान-विज्ञान और चिंतनधारा को सामयिक विकास में भूमिका निभाने से रोक दिया और आधुनिक वैज्ञानिक धारणाओं का कृत्रिम पैर मजबूत किया, इस आशा के साथ कि इन्हीं कृत्रिम पैरों से आधुनिक भारत पश्चिमी दुनिया के पीछे दौड़ लगाएगा।

राष्ट्रोन्मुख प्रवृत्ति को विघटनकारी विचार स्वीकार नहीं है। उस विचार ने अनेक अवरोधों से जूझते हुए अत्यल्प साधनों में रहकर भी भारत की एकात्म संस्कृति को जाग्रत रखा, जिससे भारत की आधुनिक राजनीति के सामने भी सांस्कृतिक आदर्श का वह दर्पण खड़ा रहा, जिसमें राजनीतिक चेहरे का कोई छोटा-सा धब्बा भी उजागर हो सकता है और किसी पार्टी नेतृत्व की छवि बिगड़ सकती है। सांस्कृतिक आदर्श का दर्पण जनास्था की क्रूर स्मृतियों से ही बनता है। यही क्रूर स्मृति भ्रष्टाचार को चिह्नित करती है और यही राष्ट्र के प्रति निष्ठा और राष्ट्र रक्षा के लिए उत्सर्ग का भाव उत्पन्न करती है।

यह स्मृति राजोन्मुख प्रवृत्ति को सर्वोपरि नहीं मानती, बल्कि अपेक्षा करती है कि आज की राजनीति भी रामराज की कसौटी पर खरा उतरे, राज सिंहासन के लिए भाइयों का वध न करे, पिता को बंदी न बनाए, अपितु राज सिंहासन पर वास्तविक उत्तराधिकारी की चरण पादुका रख उसके लोकोपकारी वचनों का अनुसरण करे। ध्यान रहे कि क्रूर स्मृति बीते हुए दिनों के आदर्श की स्मृति नही होती, यह किसी भी काल में चरितार्थ हो सकती है, यदि लोकोपकार के लिए बनी हुई राजसत्ता से व्यक्तिगत सुख-सुविधा की कोई लालसा नहीं हो, केवल दायित्व निर्वाह की ही इच्छ हो। दीनदयाल जी का एक कथन है– 'आज भारतवर्ष के नेतागण यद्यपि पश्चिमी आदर्शों

MV_January 2019 final for printing:Layout 1 1/16/2019 5:44 PM Page 15

को अपनाकर भावी भारत की रचना चाहते हैं, उनके अनुसार पश्चिम के अर्थ में, सेक्यूलर स्टेट का अर्थ लौकिक राज्य ही लगाया जा सकता है, किंतु भारतीय जनता धर्म-राज्य या रामराज्य की भूखी है और वह केवल लौकिक उन्नति से ही संतोष नहीं कर सकती' (राष्ट्रजीवन की दिशा, पृ.-55)।

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में जनास्था की इसी ध्रुवा स्मृति ने श्रीराम जन्मभूमि के सांस्कृतिक प्रसंग को प्रेरित किया और भारतीय जनसंघ के दूसरे संस्करण भारतीय जनता पार्टी को राजनीतिक शक्ति मिली। परंतु, वह राजनीतिक शक्ति पर्याप्त नहीं थी। तब अन्य दलों के गठजोड़ से केंद्र में भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्व में राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन की सरकार बनी। उसकी स्थिति ऐसी नहीं थी कि वह सांस्कृतिक अपेक्षाएँ पूरी कर पाती, स्वाभाविक था कि उस गठबंधन की राजनीति में सत्ता स्वार्थ की टक्कर और लाभ-लोभ की खींच-तान के सारे दृश्य आते, लेकिन सांस्कृतिक अस्मिता की उसी केंद्रीय विषयवस्तु का अभाव रहता और उससे मोह भंग होता। वह गठबंधन जनास्था के चित्त से उतर गया, उसके राजनीतिक खेल की सारी युक्तियाँ विफल हुई और वह चुनाव हार गया। कांग्रेस की जीत हुई, पर उसकी राजनीति शक्ति भी पर्याप्त नहीं थी। अन्य दलों के गठजोड़ से कांग्रेस के नेतृत्व में संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन की सरकार बनी। संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन को विपक्षी राष्ट्रीय जनतांत्रिक गंठबंधन की भीतरी कमजोरियों का लाभ मिला और वह दुबारा भी जीत गई।

इन दोनों गठबंधनों के नाम में रोचक अंतर है, भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्व वाले गठबंधन में राष्ट्रीय और जनतांत्रिक दो शब्द हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि यह गठबंधन राष्ट्र और जनतंत्र में निष्ठा रखता है। कांग्रेस के नेतृत्व वाले गठबंधन में न राष्ट्रीय है, न जनतंत्र। उसकी संयुक्त और प्रगतिशील दोनों शब्दों का संभवतः अर्थ यह है कि भारत की सांस्कृतिक परंपरा से अलग आधुनिक वैज्ञानिक सेक्यूलर विचार का गठबंधन। इस अनुमान का आधार जानने के लिए हम संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन के प्रधानमंत्री का एक कथन याद कर सकते हैं, न जाने किस इतिहास बोध से उन्होंने कहा था कि भारत के संसाधनों पर पहला हक मुसलमानों का है? इस कथन से मुगल काल की महिमा बढ़ जाती है। अगर इसे सुनकर पाकिस्तान के दिल में कश्मीर और लाल किला पाने की लालसा बढ़ जाए, आतंकी हमला उत्साहित हो जाए तो इसमें आश्चर्य क्या? इस गठबंधन ने कानून की गुलामी बढ़ाने वाले कुछ कारनामे भी किए, जैसे अंधविश्वास निवारण कानून, लिविंग रिलेशन इत्यादि। ये कानून प्रगतिशीलता के नमूने हैं। इनसे धर्म को अफीम मानने की बू आती है, शायद ये धार्मिक परंपरा को ध्वस्त कर देना चाहते थे और परिवार संस्था को भी पूँजीवाद की जड़ मानकर जमींदोज कर देना चाहते थे।

'आज भारतवर्ष के नेतागण यद्यपि पश्चिमी आदर्शों को अपनाकर भावी भारत की रचना चाहते हैं, उनके अनुसार पश्चिम के अर्थ में, सेक्यूलर स्टेट का अर्थ लौकिक राज्य ही लगाया जा सकता है, किंतु भारतीय जनता धर्म-राज्य या रामराज्य की भूखी है और वह केवल लौकिक उन्नति से ही संतोष नहीं नहीं कर सकती।' –पं. दीनदयाल उपाध्याय

आपातकाल में कांग्रेस द्वारा दी गई मन-मर्जी से काम करने की छूट की तरह मार्क्सवादियों को संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन में दुबारा छूट नहीं मिल पाई, इसीलिए शायद बाद में कांग्रेस और कम्यूनिस्ट के बीच

अनबन हो गई। राज करने के लिए किसी हद तक पहुँच जाने की तमन्ना रखनेवाले लोग अपने गैर जिम्मेदार कामों से समाज का मनोबल तोड़ देते हैं, गुलामी को बुला लेते हैं। इसका ताजा उदाहरण असम के घुसपैठियों से ममता बनर्जी इत्यादि का प्रेम और थोड़ा एक बासी उदाहरण-कांग्रेसी नेता मणिशंकर अय्यर का पाकिस्तान और कश्मीर पहुँचकर देश के शत्रुओं से वर्तमान भाजपा नेतृत्व की सरकार को उखाड़ने का निवेदन है।

यही है–जयचंद और मीर कासिम जैसी पतित राजोन्मुख प्रवृत्ति, जिससे रक्षा के लिए राष्ट्रोन्मुख प्रवृत्ति अनिवार्य होती है। इस प्रसंग से ज्ञात होता है कि राष्ट्रोन्मुख प्रवृत्ति के सामने आज भी चुनौतियाँ खड़ी हैं। यदि आधुनिक भारतीय राजनीति के भीतर सक्रिय पतित राजोन्मुख प्रवृत्ति सत्तासीन होने के लिए राष्ट्रघात करती जाए तो उसकी शक्ति का ह्रास होता जाएगा और राष्ट्रोन्मुख प्रवृत्ति की शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती जाएगी ।

जयचंद और मीर कासिम जैसी पतित राजोन्मुख प्रवृत्ति से रक्षा के लिए राष्ट्रोन्मुख प्रवृत्ति अनिवार्य होती है। राष्ट्रोन्मुख प्रवृत्ति के सामने आज भी चुनौतियाँ खड़ी हैं। यदि आधुनिक भारतीय राजनीति के भीतर सक्रिय पतित राजोन्मुख प्रवृत्ति राष्ट्रघात करती जाए तो उसकी शक्ति का ह्रास होता जाएगा और राष्ट्रोन्मुख प्रवृत्ति की शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती जाएगी ।

यदि हम विचार करें कि दस वर्षों तक राज करनेवाली कांग्रेस नेतृत्व की केंद्र सरकार के लिए गुजरात की भाजपा सरकार बड़ी चुनौती क्यों बनी रही? तब ज्ञात होगा कि गोधरा कांड और उसके बाद हुए गुजरात के दंगे का अंतर्भूत कारण श्रीराम की जन्मभूमि पर राम लला के मंदिर की लालसा है। इस घटना के एक ओर भाजपा नेतृत्व वाले गठबंधन की केंद्र सरकार की हार है तो दूसरी ओर गुजरात में भाजपा की लगातार जीत। यह जीत राष्ट्रोन्मुख प्रवृत्ति का समर्थन है और कांग्रेस सहित अन्य सेक्यूलर ताकतों की राजोन्मुख प्रवृत्ति की उपेक्षा है। सेक्यूलरों के लिए निश्चय ही यह अनबूझ पहेली बनी रही कि वे केंद्र में दो बार विजयी हुए , मगर गुजरात में लगातार हारते क्यों गए ? परेशानी यहीं नहीं रुकी, गुजरात की वह तथाकथित सांप्रदायिक शक्ति भारी बहुमत से केंद्र में आकर काबिज कैसे हो गई? सेक्यूलर ताकतें यह बताती हैं कि सब्जबाग दिखाने से जनता झाँसे में आ गई, जैसे कि उनकी नजर में जनमत को विवेक नहीं होता। राज को सर्वोपरि समझने वालों की सोच की यही सीमा है, परंतु राष्ट्र को सजीव और सर्वोपरि मानने वाले लोगों की नजर राजसत्ता के घेरे से बाहर भी होती है, वह चाहती है कि राजनीति को भी जनमन की तरह राष्ट्रनिष्ठा होना चाहिए।

जब अतिशय पद लोलुपता में राजनीति पार्टियाँ अराजक तत्त्वों के आगे झुकने लगती हैं और उनकी शह पाकर अराजक तत्त्व जन जीवन का भक्षण करने लगते हैं तब जनता निस्सहाय होकर विकल्प तलाशती है। असम और उत्तर प्रदेश में पदासीन पार्टियों की हार जनता की अपेक्षाएँ पूरी नहीं कर पाने के कारण नहीं हुई, बल्कि अराजक तत्त्वों को प्रश्रय देने के कारण हुई। असुरक्षित जन जीवन ने राष्ट्रनिष्ठ पार्टी को चुना है। समाजवादी पार्टी उत्तरप्रदेश में मुसलमानों की खुशी के लिए हिंदुओं की आस्था को कुचलने लगी थी और कांग्रेस असम में बांग्लादेशी घुसपैठियों की उग्रता के आगे झुकने लगी थी, अस्मिता के संकट ने पदासीन पार्टियों को व्यर्थ सिद्ध कर दिया। विभाजन के बाद स्वाधीन भारत में पहली बार इतनी तीव्रता से जनता ने असुरक्षा के संकट का अनुभव किया। यह स्थानीय

MV_January 2019 final for printing:Layout 1 1/16/2019 5:44 PM Page 17

संकट नहीं है, राष्ट्रीय संकट है। इस संकट को प्रश्रय देनेवाली दुर्बलताएँ देश के सेक्यूलर विचार और सराय सरीखी पहचान से पैदा हुई हैं। इन दुर्बलताओं का इलाज है राष्ट्रोन्मुख प्रवृत्ति की सर्वोच्चता को स्थापित करना। यही स्थापना हमें बताती है कि क्यों आधुनिक भारतीय राजनीति को राष्ट्र की अन्तर्भूत सांस्कृतिक शक्ति के अनुकूल रहना चाहिए।

राष्ट्रनिष्ठा के मानदंड पर राजोन्मुख और राष्ट्रोन्मुख प्रवृत्तियों के भेद और इनके आपसी द्वंद्व को रेखांकित करना होगा और समसामयिक राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में इन दोनों की भूमिका का मूल्यांकन करके स्पष्ट रूप में बताना होगा कि राष्ट्रोन्मुख प्रवृत्ति के सांस्कृतिक कार्यों से ही राष्ट्र की स्वाधीन अस्मिता स्थायित्व ग्रहण करती है। यह कार्य दीनदयाल जी द्वारा स्थापित राष्ट्रधर्म के अनुगमन से ही संभव है।

बहुधा राष्ट्रोन्मुख प्रवृत्ति सुप्त प्रायः प्रतीत होती है, लेकिन उसकी निष्ठा जैसी-तैसी राजनीतिक सफलता में नहीं होती, उसे संपन्नता के साथ प्रसन्नता चाहिए, उसे परखी हुई सांस्कृतिक शक्ति का आश्रय चाहिए। उसे अपना राम चाहिए, लेकिन जैसी-तैसी भीख की रोटी नहीं, उसे धर्म चाहिए लेकिन किसी कुकृत्य से उत्पन्न अर्थ नहीं। उसे चाहिए राम की रोटी-धर्म पूर्वक अर्थ। जब भी यह आशा-अपेक्षा टूटती है, जनमन की व्यथा कहीं न कहीं व्यक्त हो जाती है—मन के क्षोभ में या चुनाव के परिणाम में। इस लक्षण से राष्ट्र की सजीव सांस्कृतिक शक्ति का अनुभव किया जा सकता है।

इन साक्ष्यों के आधार पर समझा जा सकता है कि दीनदयाल जी ने भारत की आधुनिक राजनीति में सांस्कृतिक तत्त्वों का विनियोग क्यों किया। वस्तुतः सांस्कृतिक तत्त्व ही जनास्था का आधार होते हैं। जनमन संस्कृति में ही रमण करता है, संस्कृति का आधार लेकर ही राजनीति जनमन के अनुकूल, कर्तव्यनिष्ठ और विश्वसनीय हो पाती है। सांस्कृतिक तत्त्वों के आधार पर ही पं. दीनदयाल जी ने राजनीतिक शील की स्थापना की और लोकतंत्र को परिष्कृत करने का रास्ता दिखाया। इन तथ्यों को उन्होंने केवल कहा ही नहीं, प्रयोग द्वारा चरितार्थ किया, आदर्श बना दिया, जिससे भारतीय राजनीति के पूर्व चरित्र में परिवर्तन की संभावना बढ़ती जा रही है और राष्ट्रनिष्ठ राजनीति सशक्त हो रही है।

दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि पं. दीनदयाल जी ने जिस राष्ट्राराधना के पथ पर अपने जीवन की आहुति दी, वह राष्ट्राराधना भारत माता की करोड़ों संतानों के हृदय के भाव और प्राणों का संगीत है, वह निष्ठा के तप से मुखर होती है। वास्तव में यह राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का मंत्र है, जिसे दीनदयाल जी ने भारतीय जनसंघ के संगठन के लिए प्रयुक्त किया था। यही कारण है कि उनसे पोषित राजनीतिक संगठन की राजोन्मुख प्रवृत्ति से भी अपेक्षा की जाती हैं कि वह राष्ट्रोन्मुख प्रवृत्ति के आदर्शों पर चलेगी।

राष्ट्रनिष्ठा के मानदंड पर राजोन्मुख और राष्ट्रोन्मुख प्रवृत्तियों के भेद और इनके आपसी द्वंद्व को रेखांकित करना होगा और समसामयिक राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में इन दोनों की भूमिका का मूल्यांकन करके स्पष्ट रूप में बताना होगा कि राष्ट्रोन्मुख प्रवृत्ति के सांस्कृतिक कार्यों से ही राष्ट्र की स्वाधीन अस्मिता स्थायित्व ग्रहण करती है।

(लेखक राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली में प्राध्यापक हैं।)

MV_January 2019 final for printing:Layout 1 1/16/2019 5:44 PM Page 18

माता भूमि पुत्रोऽहं पृथिव्याः ।
अथर्ववेद

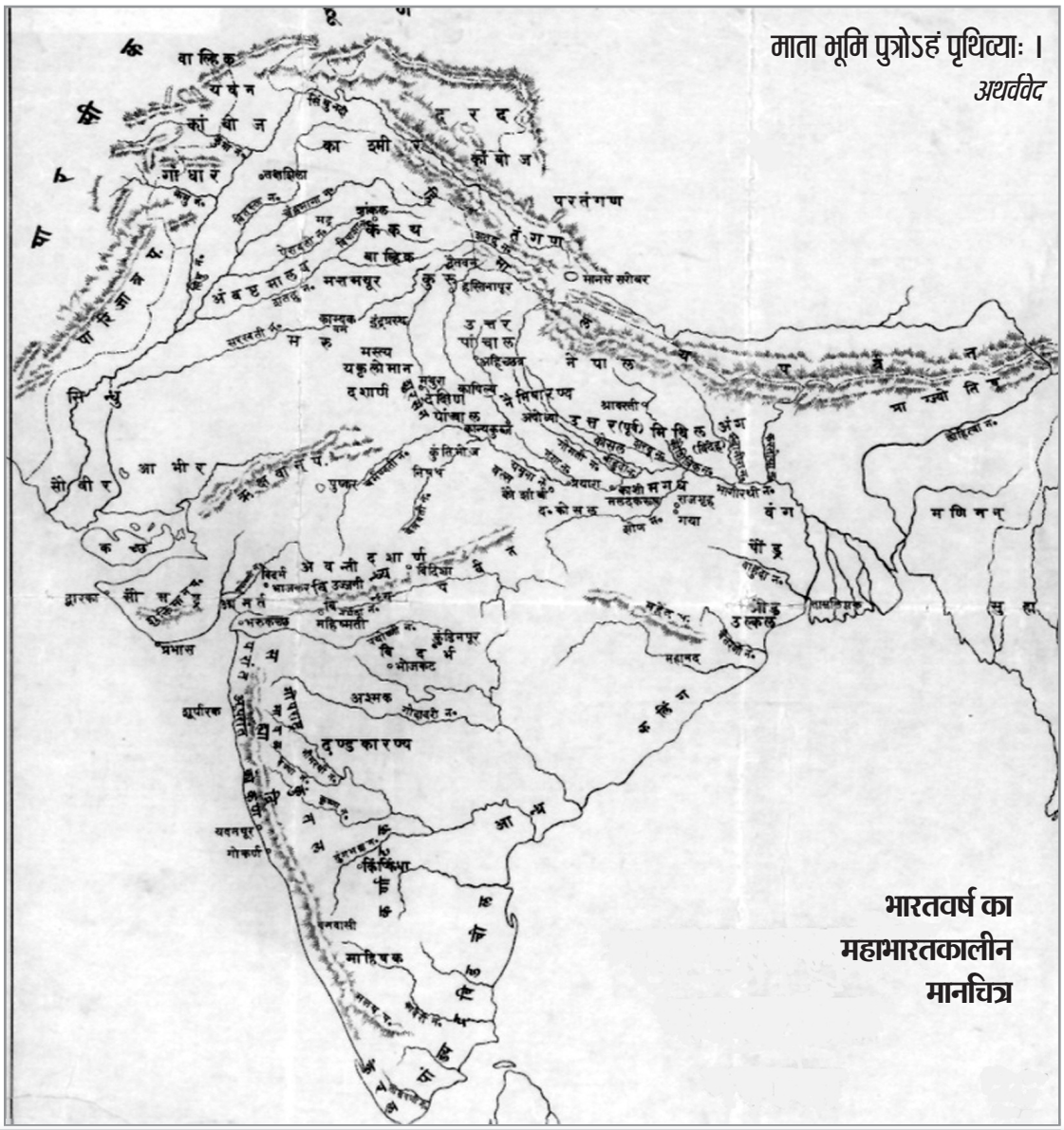

भारतवर्ष का महाभारतकालीन मानचित्र

राष्ट्र के संबंध में भारत और पश्चिम की अवधारणाओं में मौलिक भेद है। भारतीय मान्यता के अनुसार 'राष्ट्र' एक सनातन सांस्कृतिक इकाई है, जिसके आधार पर सांस्कृतिक एकता ही राष्ट्रीय एकता का मूलमंत्र है। इसके विपरीत पश्चिम में, फ्रांस की क्रांति के पश्चात्, 19वीं शताब्दी में राजनीतिक संकल्पना के आधार पर राष्ट्र की अवधारणा का जन्म हुआ। प्रस्तुत लेख में पूर्व और पश्चिमी की राष्ट्र संबंधी अवधारणा के अंतर और राष्ट्र जीवन पर इनके प्रभाव को स्पष्ट कर रहे हैं विद्वान लेखक *ओम प्रकाश दूबे* –

MV_January 2019 final for printing:Layout 1 1/16/2019 5:44 PM Page 19

ओम प्रकाश दुबे

राष्ट्रवाद : भारतीय चिंतन

भारतीय राजनीति में राष्ट्रीय एकता और अखंडता का प्रश्न बहुत महत्त्वपूर्ण है। किंतु राष्ट्र किसे कहते हैं, हमारी राष्ट्रीयता की जड़ें कहाँ हैं, एकता का भावात्मक आधार क्या हो, राष्ट्रीय अखंडता की बात करते समय 'अखंडता' से हमारा क्या अभिप्राय है, किसकी अखंडता –भूमि की या जन की या दोनों की– यदि भूमि, तो भूमि की कौन सीमाएँ हमारी आँखों में बसी हैं; यदि जन की, तो जन को परस्पर जोड़ने वाली और यदि दोनों की, तो जन और भूमि की एकता का सूत्र क्या है?

राष्ट्र की अवधारणा से संबंधित इन प्रश्नों पर भारतीय चिंतन और यूरोपीय विचारों में बहुत अंतर है। भारतीय चिंतन के अनुसार राष्ट्र एक सनातन व सांस्कृतिक अवधारणा है, जबकि इसके विपरीत पश्चिम की सोच के अनुसार ये स्वाभाविक प्रश्न हैं, जिन पर मतैक्य के बजाय भारी मतभेद हैं। फ्रांस की क्रांति (1789-1799) के पश्चात् उन्नीसवीं शताब्दी में 'राष्ट्र', 'राष्ट्रीयता', 'राष्ट्रवाद' आदि अवधारणाओं का जन्म हुआ। इस प्रकार पश्चिम के अनुसार 'राष्ट्र' एक आधुनिक व राजनीतिक संकल्पना है और राजनीतिक एकता उसके अस्तित्व की पहली आवश्यकता है। इसके अनुसार भूमि, भाषा, उपासना पद्धति एवं नस्ल की एकता का होना भी 'राष्ट्र' कहलाने के लिए आवश्यक है।

उन्नीसवीं शताब्दी में यूरोप में ही मार्क्सवाद का जन्म हुआ। मार्क्सवाद ने जीवन में धर्म और राष्ट्रवाद की प्रेरणाओं को ही अस्वीकार कर दिया। उसके अनुसार 'राष्ट्रवाद' पूँजीवाद द्वारा गढ़ी गई एक 'झूठी बुर्जुआ चेतना' है। फिर भी भारत के कुछ मार्क्सवादी इतिहासकारों ने भारत में राष्ट्रवाद के आर्थिक आधारों को खोजने की कोशिश की और इसे ब्रिटिश पूँजीवाद द्वाराआर्थिक शोषण व विस्तारवाद का परिणाम बताया।

पश्चिम भौगोलिक एकता का माध्यम राज्य और राजनीतिक विजय रही है, तो हंस कोहन जैसे विद्वानों के अनुसार भारत में सांस्कृतिक प्रक्रिया द्वारा राष्ट्रीयता की आधार-भूमि तैयार हुई है। पाश्चात्य विद्वान लंबे अध्ययन के पश्चात् जिन निष्कर्षों पर पहुँच रहे हैं, उन निष्कर्षों को भारत के अनेक मनीषी बहुत पहले से कहते चले आ रहे हैं। 1902 में विपिन चंद्र पाल ने लार्ड कर्जन को उत्तर

MV_January 2019 final for printing:Layout 1 1/16/2019 5:44 PM Page 20

दिया था कि ''यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि केवल व्यक्तियों की भीड़ और विभिन्न मानव समूहों के भौगोलिक, राजनीतिक अथवा आर्थिक कारणों से एकत्र होने को राष्ट्रीयता नहीं कह सकते। राष्ट्र एक जीवमान पूर्ण इकाई होती है। इस पूर्ण इकाई के प्रति इसके प्रत्येक अंक का पूर्ण समर्पण एवं भक्ति ही राष्ट्रीयता की कसौटी है''।

1905 में बंग-भंग विरोधी आंदोलन के समय बंगाल में जो साहित्य सृजन हुआ, वह भारत माता की भक्ति से ओतप्रोत है। 'वंदे मातरम्' जैसे नारों का प्रादुर्भाव हुआ। उन्हीं दिनों गांधी जी ने 1909 में अपनी पुस्तक 'हिंद स्वराज' में स्पष्ट शब्दों में लिखा था–

''यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि केवल व्यक्तियों की भीड़ और विभिन्न मानव समूहों के भौगोलिक, राजनीतिक अथवा आर्थिक कारणों से एकत्र होने के राष्ट्रीयता नहीं कह सकते। राष्ट्र एक जीवमान पूर्ण इकाई होता है। इस पूर्ण इकाई के प्रति इसके प्रत्येक अंक का पूर्ण समर्पण एवं भक्ति ही राष्ट्रीयता की कसौटी है''। –विपिन चंद्र पाल

''अँग्रेजों ने हमें बताया है कि हम पहले कभी एक राष्ट्र नहीं थे और हमें एक राष्ट्र बनने के लिए सैकड़ों वर्ष लगेंगे। यह बात पूर्णतः आधारहीन है। जब अँग्रेज हिन्दुस्तान में नहीं थे, तब भी हम एक राष्ट्र थे और हमारे विचार एक थे। हमारा रहन-सहन एक था। तभी तो अँग्रेजों ने यहाँ एक राज्य स्थापित किया। भेद तो बाद में उन्होंने ही पैदा किए।''

''मैं जो कहता हूँ वह बिना सोचे समझे नहीं कहता। एक राष्ट्र का अर्थ यह नहीं है कि हमारे बीच अंतर ही था। यहाँ पर अधिकतर लोग पैदल या बैलगाड़ी में हिंदुस्तान की यात्रा करते थे। वे एक दूसरे की भाषा सीखते थे और उनके बीच कोई सांस्कृतिक अंतर नहीं था। जिन दूरदर्शी महापुरुषों ने सेतुबंध रामेश्वर, जगन्नाथ पुरी, द्वारका धाम और हरिद्वार की यात्रा का प्रावधान किया, उनका अपने विचार में एक हिंदुस्तान का ही ध्यान रहा होगा। यह तो हमें निःसंकोच स्वीकार करना पड़ेगा कि वे बहुत बुद्धिमान थे। वे जानते थे कि ईश्वर का भजन तो घर बैठे हो सकता है। उन्होंने हमें सिखाया है कि 'मन चंगा तो कठौती में गंगा'। लेकिन उन्होंने सोचा कि कुदरत ने हिंदुस्तान को एक देश बनाया है, इसलिए वह एक राष्ट्र भी होना चाहिए। इसलिए अलग-अलग तीर्थ स्थान तय करके लोगों को एकता का सबक इस तरह दिया, जैसे दुनिया में और कहीं नहीं दिया गया है''।

1911 में प्रकाशित 'सोल आफ इंडिया' (भारत की आत्मा) नामक पुस्तक में विपिन चंद्र पाल ने भारतीय राष्ट्रीयता के स्वरूप का वैज्ञानिक रूप से विवेचन किया है और आधुनिक पाश्चात्य राष्ट्रवाद से उसका अंतर स्पष्ट किया है। 1912 में 'हिंदू रिव्यू' नामक मासिक पत्र में उन्होंने 'हिंदू नेशनलिज्म व्हाट इज इट स्टैण्ड फार' विषय पर एक लंबा लेख लिखा। लगभग इसी समय एक युवा इतिहासकार राधा कुमुद मुखर्जी ने 'फंडामेंटल यूनिटी ऑफ इंडिया' नामक पुस्तक में भारत की बाह्य विविधता में विद्यमान मूलभूत एकता के सूत्रों का शोधपूर्ण विवेचन किया है और 1921 में लंदन से उनकी एक अन्य पुस्तक 'नेशनलिज्म इन हिंदू कल्चर' (हिंदू संस्कृति में राष्ट्रवाद) प्रकाशित हुई।

यदि इन भारतीय मनीषियों एवं पाश्चात्य विद्वानों द्वारा 'राष्ट्रीयता' की नवीन व्याख्याओं के प्रकाश में हम अपने इतिहास का अध्ययन करें, तो हमें ज्ञात होता है कि संपूर्ण पौराणिक साहित्य राष्ट्रीयता के दो मूलभूत तत्त्वों– देशभक्ति एवं ऐतिहासिक-सांस्कृतिक गौरव भाव से ओतप्रोत है। विष्णुपुराण के अनुसार–

MV_January 2019 final for printing:Layout 1 1/16/2019 5:44 PM Page 21

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।
वर्ष तद् भारतं नाम भारती यत्र सन्तति।।

अर्थात् समुद्र के उत्तर में और हिमालय के दक्षिण में जो देश स्थिति है, उसका नाम भारत है और उसकी संतान को भारती कहते हैं।

गायन्ति देवाः किल गीतकानि,
धन्यास्तु ते भारतभूमि भागे।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्ग भूते,
भवन्ति भूयः पुरुषाः सुख्यात् ।।

अर्थात् देवता भी स्वर्ग में गीत गाते हैं कि वे धन्य हैं, जिनका जन्म भारतभूमि पर हुआ है। यह भूमि तो स्वर्ग से भी बढ़कर है, क्योंकि यहाँ जन्म लेते ही मोक्ष का रास्ता मिल जाता है। लेकिन स्वर्ग में रहने वाले हम देवताओं को पुण्य क्षीण होने पर फिर से पृथ्वी पर वापस आना पड़ेगा।

विष्णु पुराण की रचना ईसापूर्व मानी जाती है। इसका अर्थ हुआ कि ईसा पूर्व ही भारत में राष्ट्रीयता की अवधारणा थी।

इसी प्रकार महाभारत के भीष्म पर्व में भारत की एक प्रशस्ति मिलती है –

अत्र ते कीर्तयिष्यामि वर्षं भारत भारतम् ।
प्रियमिन्द्रस्य देवस्य मनोवैवं स्व तस्य च।।

महा./भीष्म./9.5

अर्थात् तुमसे उस भारतवर्ष की प्रशंसा करता हूँ, जो देवराज इन्द्र को प्यारा है। जिस भारत को वैवस्वत के पुत्र मनु ने अपना प्रिय माना। अतः स्पष्ट है कि प्राचीन काल में ही भारतीय राष्ट्रीयता को भौगोलिक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक आधार प्राप्त था।

आदि शंकराचार्य, जिनका जन्म ईसा पूर्व 466 में केरल के कलाड़ी गाँव में हुआ था, ने पूर्व में जगन्नाथ पुरी में गोवर्धन पीठ, पश्चिम में द्वारका में द्वारका पीठ, उत्तर में बद्रीनाथ में ज्योतिष पीठ और दक्षिण में श्रृंगेरी पीठ की स्थापना करके भारतीय राष्ट्रीयता का ज्वलंत स्वरूप प्रदान किया था। भारत की भौगोलिक एवं सांस्कृतिक एकता का संस्कार जन-जन के मन पर अंकित करने के लिए संकल्प मंत्र में इसका उल्लेख मिलता है।

जम्बूद्वीपे भरत खंडे आर्यावर्तेक देशान्तरगते,
अमुक क्षेत्रे अमुक नगरे .....

और अंत में संकल्पकर्ता को उसकी कुल परंपरा का स्मरण दिलाता है। राष्ट्रीयता का यह अति उज्ज्वल उदाहरण है।

'माता भूमि पुत्रोऽहं पृथिव्याः ।'

यह पृथ्वी मेरी माता है, मैं इसका पुत्र हूँ।

यह उद्घोष करने वाले अथर्ववेद के पृथिवी सूक्त को संसार का प्रथम राष्ट्रगीत कहा जा सकता है। पृथ्वी की विविधता को स्वीकार करते हुए उल्लेख है–

जनं विभ्रति बहुधाविचासं,
नाना धर्माणं पृथिवी यथौकसम् ।

अर्थात् यह पृथ्वी अनेक भाषाओं को बोलने वाले, अनेक आचार-विचारों (धर्मों) का पालन करने वाले जन को धारणा करती है।

अथर्ववेद का यह सूक्त भारतीय राष्ट्रवाद की भावात्मक और सांस्कृतिक आधारभूमि प्रस्तुत करता है। यह पृथ्वी के प्रति भोग एवं शोषण की नहीं बल्कि कृतज्ञता की पुत्रवत् भावना उत्पन्न करता है।

(लेखक जनशक्ति विकास एवं प्रबंधन सलाहकार है।)

'अँग्रेजों ने हमें बताया है कि हम पहले कभी एक राष्ट्र नहीं थे और हमें एक राष्ट्र बनने के लिए सैकड़ों वर्ष लगेंगे। यह बात पूर्णतः आधारहीन है। जब अँग्रेज हिंदुस्तान में नहीं थे तब भी हम एक राष्ट्र थे और हमारे विचार एक थे। हमारा रहन-सहन एक था। तभी तो अँग्रेजों ने यहाँ एक राज्य स्थापित किया। भेद तो बाद में उन्होंने ही पैदा किए।' –महात्मा गांधी

MV_January 2019 final for printing:Layout 1 1/16/2019 5:44 PM Page 22

असम में राष्ट्रीय नागरिकता रजिस्टर (एनआरसी) बहुत ही ज्वलंत मुद्दा बना है। इसके मूल में है बांग्लादेशियों की घुसपैठ जिसके कारण इसी क्षेत्र का जनसांख्यकीय संतुलन बिगड़ गया और क्षेत्र की सांस्कृति व देश की अखंडता के समक्ष खतरा उत्पन्न हो गया। एनआरसी बनाने व बांग्लादेशी घुसपैठियों की पहचान कर उन्हें बाहर निकालने के लिए असम में व्यापक जनआंदोलन हुआ। परंतु तत्कालीन सरकारों द्वारा जनभावनाओं की उपेक्षा के कारण घुसपैठ निरंतर जारी रही। अब उच्चतम न्यायालय की निगरानी में एनआरसी बनाने का काम प्रगति पर है। इस समस्या से जुड़े विभिन्न महत्त्वपूर्ण पहलुओं से अवगत करा रहे हैं विद्वान लेखक *ओम प्रकाश मिश्र* –

MV_January 2019 final for printing:Layout 1 1/16/2019 5:44 PM Page 23

ओम प्रकाश मिश्र

राष्ट्रीय नागरिकता रजिस्टर

राष्ट्र की संकल्पना में तीन तत्त्वों का होना आवश्यक है– भूमि, जन एवं सांस्कृतिक मूल्य। भूमि और जन किसी देश के लिए अनिवार्य हैं; यह उसी प्रकार से हैं; जैसे जल में मछली का अस्तित्व। वस्तुतः वहाँ के जन अपने जीवन मूल्यों, पूर्वजों के प्रति सम्मान व पूजन का भाव, मातृभूमि के प्रति मातृभाव यह अत्यंत आवश्यक है।

हमारे राष्ट्र में यह भाव है– '' माता भूमि पुत्रोऽहम पृथिव्याः'' अर्थात् पृथ्वी या धरती हमारी माता है और हम उसके पुत्र हैं। किसी भू-भाग में रहने वाले निवासियों में अपनी संस्कृति, चिति, जीवन-मूल्यों, लोकाचार, लोकव्यवहार, परस्पर आत्मीय भाव; समान पूर्वजों के प्रति सम्मान का भाव ही देश को राष्ट्र बनाते हैं।

भारत भूमि पर शक, हूण, कुषाण एवं अन्य विदेशियों का समय-समय पर आना हुआ; परंतु वे समय के साथ भारतीय संस्कृति के अंग बने। किंतु मुसलिम आक्रांताओं और ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के गुणधर्म व जीवन-मूल्य हमारे राष्ट्रीय चरित्र से एक दम मेल नहीं खाए। मुसलिम आक्रांताओं ने कालांतर में तलवार व लालच के हथियारों से बड़े पैमाने पर धर्मांतरण कराया। भारतीय जन का पहली बार एक ऐसे वर्ग से सामना हुआ, जो इतना क्रूर, बर्बर, असहिष्णु था कि उनके साथ एकत्व के भाव का प्रश्न ही नहीं उठ सकता था।

किसी भी राष्ट्र के अस्तित्व के लिए समान-जीवन-मूल्यों वाली संस्कृति के परिपोषक तत्त्वों का संवर्धन करने वाले जन ही आधार स्वरूप होते हैं। परंतु यदि उस निश्चित भूमि पर, राष्ट्र की संस्कृति के अनुरूप आचरण करने वाले लोग क्रमशः घटते जाएँ तो यह सांस्कृतिक ह्रास व क्षरण, धीरे-धीरे राष्ट्र की अस्मिता के क्षरण का कारण बन जाता है। इस प्रकार का जनसंख्या असंतुलन तीन कारणों से बढ़ सकता है–

1.धर्मांतरण

MV_January 2019 final for printing:Layout 1 1/16/2019 5:44 PM Page 24

''संभवतः पिछले 25 वर्षों के दौरान प्रांत में यह सबसे महत्त्वपूर्ण एक घटना है, जो स्थायी रूप से असम के पूरे भविष्य को बदल सकती है। इसके अलावा, असमिया संस्कृति एवं सभ्यता की पूरी संरचना को नष्ट करने के लिए पूर्वी बंगाल (बांग्लादेश) के जिलों से झुंड के झुंड, जमीन कब्जाने वाले, घुसपैठियों ने धावा बोला है, जिनमें अधिकांश मुसलमान हैं... जहाँ शव होंगे, वहाँ गिद्ध इकट्ठे हो जाएंगे ।।''

- सी. एस. मुलन

जनगणना अधीक्षक, जनगणना 1931

2. जन्मदर में वृद्धि के द्वारा

3. विदेशी घुसपैठ के द्वारा

धर्मांतरण के द्वारा इसलाम व ब्रिटिश सत्ता ने जो खेल खेला, उसी के कारण, धर्म के आधार पर पाकिस्तान का जन्म हुआ। अखंड भारत को खंडित किया गया। इसमें जन्म दर में वृद्धि की भी बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका थी।

विदेशी घुसपैठ के द्वारा, जनसंख्या में असंतुलन का जीता जागता उदाहरण, बांग्लादेश (पहले पूर्वी पाकिस्तान) से बड़ी मात्रा में घुसपैठ है। जहाँ से असम, पश्चिम बंगाल, पूर्वोत्तर के अन्य राज्य, बिहार तथा देश के सभी राज्यों में यह घुसपैठ हुई। असम व पश्चिम बंगाल में यह बहुत अधिक हुई। इसमें तत्कालीन सरकारों की भी भूमिका रही। कभी मौन समर्थन, कभी निष्क्रियता, तो कभी अपने दलगत क्षुद्र हितों की खातिर, राष्ट्रीय अस्मिता के साथ विश्वासघात किया गया।

वस्तुतः असम में घुसपैठ व जनसांख्यिकीय असंतुलन की पृष्ठभूमि में ब्रिटिश सत्ता का भी योगदान रहा। यह ज्ञातव्य है कि असम की भूमि अत्यंत उपजाऊ है; इसलिए 1905 में बंगाल के विभाजन के काल से ही, ब्रिटिश सरकार ने पूर्वी बंगाल (जो आज बांग्लादेश है) से बंगाली मुसलमानों को ब्रह्मपुत्र घाटी के बेहद उपजाऊ क्षेत्र की ओर बसाने में सहयोग दिया। ब्रिटिश सत्ता का लक्ष्य, भारत की उर्वरा भूमि का पूरा शोषण व प्राकृतिक संसाधनों की लूट था। अँग्रजों ने लाइन सिस्टम के द्वारा परती पड़ी भूमि पर असम में बंगाली मुसलमानों को बसाया और इसका लाभ मुसलिम लीग ने अपना प्रभाव क्षेत्र बढ़ाने के लिए किया। यह प्रक्रिया निरंतर चलती रही। इस स्थिति की भयावहता का चित्रण 1931की जनगणना रिपोर्ट में तत्कालीन जनगणना अधीक्षक सी.एस. मुलन ने इस प्रकार से किया है–

''संभवतः पिछले 25 वर्षों के दौरान प्रांत में यह सबसे महत्त्वपूर्ण एक घटना है, जो स्थायी रूप से असम के पूरे भविष्य को बदल सकती है। इसके अलावा, असमिया संस्कृति एवं सभ्यता की पूरी संरचना को नष्ट करने के लिए पूर्वी बंगाल (बांग्लादेश) के जिलों से झुंड के झुंड, जमीन कब्जाने वाले, घुसपैठियों ने धावा बोला है, जिनमें अधिकांश मुसलमान हैं... जहाँ शव होंगे, वहाँ गिद्ध इकट्ठे हो जाएंगे ।।''

असम में मुसलमानों के लगातार बसाए जाने का व्यापक विरोध हुआ जिसके परिणामस्वरूप 1937 में गोपीनाथ बोरदोलोई के नेतृत्व में बनी कांग्रेस सरकार, मुसलिम आबादी की बसाहट रोकने के वादे के साथ सत्ता में आई थी। मुख्यमंत्री गोपीनाथ बोरदोलोई इस दिशा में गंभीरता से प्रयास कर रहे थे। इसी दौरान कांग्रेस हाईकमान ने ब्रिटिश सरकार की नीतियों के विरुद्ध अपनी प्रदेश सरकारों को त्यागपत्र दिलाने का निर्णय लिया। यद्यपि सुभाष चंद्र बोस एवं गोपीनाथ बोरदोलोई असम की जनसंख्या असंतुलन की समस्या के कारण, असम में कांग्रेस सरकार बनाए रखना चाहते थे, लेकिन कांग्रेस हाईकमान ने समस्या पर ध्यान न दिया और उसका परिणाम असम में 'मुसलिम लीग' की सरकार

MV_January 2019 final for printing:Layout 1 1/16/2019 5:44 PM Page 25

के रूप में दिखाई दिया। दिव्य कुमार सोती ने अपने लेख 'अतीत में छिपी असम संकट की जड़ें'('दैनिक जागरण', 27 अगस्त 2018) में स्पष्टतः उल्लेख किया है –

''इस निर्णय के कारण असम में मुसलिम लीग को सरकार बनाने का मौका मिल गया, जिसका उसने अपने इसलामिक विस्तारवादी एजेंडे को लागू करने में इस्तेमाल किया। मुसलिम लीग सरकार ने पूर्वी बंगाल से आने वाले मुसलमानों को एक लाख बीघा जमीन और आवंटित कर दी। इन सबका नतीजा यह हुआ कि निचले असम में जो मुसलिम जनसंख्या 1901 में 14 प्रतिशत फीसदी थी, वह 1941 आते-आते 32 फीसदी हो गई। परिणामस्वरूप मुसलिम लीग ने असम को पाकिस्तान में शामिल करने की माँग करनी शुरू कर दी।.... असम में 1944 तक स्थितियाँ कितनी विकट हो चुकी थीं, इसका अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि गांधी जी ने पूर्वी बंगाल के लोगों को असम में बसाने को राष्ट्रविरोधी मानते हुए कहा था– कि इससे लड़ने के लिए जरूरत पड़ने पर अहिंसात्मक और हिंसात्मक दोनों तरीके अपनाने होंगे। इसके बाद भी कांग्रेस हाईकमान, असम के हालात को लेकर गंभीर नहीं हुआ। देश के बँटवारे से पहले 1946 में अंग्रेजों द्वारा भेजे गए 'कैबिनेट मिशन' ने असम को मुसलिम बहुल बंगाल के साथ ग्रुप सी में मिला दिया। जिसका व्यावहारिक मतलब असम को पूर्वी पाकिस्तान में शामिल किए जाने का खतरा था।''

परंतु गोपीनाथ बोरदोलोई व अन्य के प्रयासों से, असम कांग्रेस ने, कांग्रेस हाईकमान व ब्रिटिश सरकार दोनों का विरोध किया (इसमें गांधी जी की सलाह भी गोपीनाथ बोरदोलोई को थी कि असम को पूर्वी

पाकिस्तान में जाने का विरोध करें)। इन प्रयासों से असम को पूर्वी पाकिस्तान में जाने का मंसूबा पूरा नहीं हो पाया।

1947 में भारत के खंडित होने के बाद पाकिस्तान के अस्तित्व में होने पर; भारत को स्वतंत्रता प्राप्त हुई, किंतु असम में घुसपैठ निरंतर जारी रही।

असम, भारत का अकेला राज्य है, जहाँ के लिए राष्ट्रीय नागरिकता रजिस्टर की व्यवस्था करने का प्रयास किया गया है। यह आसानी से नहीं हुआ है। इसके लिए राज्य के लोगों को लगातार प्रयास व संघर्ष करने पड़े। तत्कालीन पूर्वी पाकिस्तान (आज का बांग्लादेश) से घुसपैठियों की समस्या को देखते हुए तत्कालीन गृहमंत्री सरदार वल्लभ भाई पटेल ने राष्ट्रीय नागरिकता रजिस्टर तैयार कराने की व्यवस्था की थी।

असम, भारत का अकेला राज्य है, जहाँ के लिए राष्ट्रीय नागरिकता रजिस्टर की व्यवस्था करने का प्रयास किया गया है, जिसके लिए राज्य के लोगों को लगातार प्रयास व संघर्ष करने पड़े। तत्कालीन पूर्वी पाकिस्तान से घुसपैठियों की समस्या को देखते हुए तत्कालीन गृहमंत्री सरदार वल्लभ भाई पटेल ने राष्ट्रीय नागरिकता रजिस्टर तैयार कराने की व्यवस्था की थी।

1951 में पहला राष्ट्रीय नागरिकता रजिस्टर आया था। ऐसी व्यवस्था प्रावधानों में थी कि प्रत्येक दस वर्ष में इसे अपडेट किया जाना था। परंतु ढिलाई एवं संभवतः दुरभिसंधि के कारण इसे अपडेट करने का कार्य नहीं कराया गया। इसमें तत्कालीन सरकारों की भूमिका भी संदिग्ध है।

1961 की जनगणना में यह अनुमान किया गया कि 2, 20, 691 घुसपैठिये असम में प्रवेश कर चुके थे। 1965 में भारत सरकार ने असम सरकार को एन.आर.सी. का कार्य शीघ्र पूरा करने को कहा एवं अवैध घुसपैठियों की पहचान करने के लिए राष्ट्रीय पहचान-पत्र जारी करना था। परंतु 1966 में केंद्र सरकार ने, असम सरकार की सलाह से इस योजना को अव्यावहारिक बताते हुए, लागू करने से मना कर दिया।

वस्तुतः 1947 से लेकर 1971 तक बहुत बड़े पैमाने पर अवैध घुसपैठ हुई। अखिल असम छात्र संघ (ए.ए.एस.यू.) और अखिल असम गण संग्राम परिषद (ए.ए.जी.एस.पी.) ने 1979 से लेकर लगभग 6 वर्षों तक आंदोलन चलाया। इस आंदोलन के फलस्वरूप एक जन आंदोलन की चरम परिणति 1985 में ऐतिहासिक समझौता हुआ, जिसमें केंद्र सरकार व राज्य सरकार दोनों शामिल थीं, जिसमें तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी भी उपस्थित थे। उक्त समझौते के मुख्य बिंदु निम्नांकित थे –

1. 1966 तक आए सभी बांग्लादेशियों (तत्कालीन पूर्वी पाकिस्तान) को मतदान के अधिकार समेत पूर्ण नागरिकता प्रदान की जाए।

2. वर्ष 1966 से 24 मार्च, 1971 के मध्य के समय में आए लोगों को 10 वर्ष तक मताधिकार न प्राप्त हो, परंतु एक नागरिक के रूप में बाकी सभी अधिकार मिलें।

3. 24 मार्च, 1971 के उपरांत आए बांग्लादेशियों की पहचान करके, उन्हें वापस भेजा जाए।

असम समझौते के उपबंध 5.8 के अनुसार, 25 मार्च, 1971 या उसके बाद असम में आने वाले विदेशियों की पहचान करने की जिम्मेदारी राज्य तथा केंद्र सरकार की थी।

1983 में केंद्र सरकार ने आई.एम.डी.टी. (अवैध धुसपैठियों की पहचान को न्यायधिकारण) द्वारा करने का अधिनियम पारित किया था, जिससे विदेशियों की पहचान आदि अत्यंत कठिन हो गई थी। इस अधिनियम

MV_January 2019 final for printing:Layout 1 1/16/2019 5:44 PM Page 27

का परिणाम यह हुआ कि 1983 से 2005 तक केवल 1489 विदेशियों की पहचान और उनका निर्वासन हो सका। वस्तुतः आई.एम.डी.टी. एक्ट में प्रावधान था कि शिकायतकर्ता को ही, संदिग्ध विदेशियों के बारे में दस्तावेज प्रस्तुत करने थे। यह अत्यंत अव्यावहारिक था। बाद में भारत के उच्चतम न्यायालय ने आई.डी.एम.टी. एक्ट को दरकिनार कर दिया।

वस्तुतः इस असम समझौते को लागू करने के गंभीर प्रयास नहीं किए गए। राष्ट्रीय नागरिकता रजिस्टर (एन.आर.सी.) को अद्यतन करने के दो पायलट प्रोजेक्ट (कामरूप जिला व बरपेटा जिला) आरंभ हुए, परंतु कानून-व्यवस्था की गंभीर स्थिति उत्पन्न होने के कारण इसे रोक दिया गया।

अन्ततः भारत के उच्चतम न्यायालय द्वारा इस मामले को निर्णीत करना ही एक महत्त्वपूर्ण घटना है। चूंकि असम समझौते के बाद से एन.आर.सी. के कार्य में कोई प्रगति नहीं हो रही थी, अस्तु, दो रिट याचिकाओं (असम पब्लिक वर्क्स एवं असम सम्मिलिता महासंघ एवं अन्य) को निस्तारण के आदेश 2013 में दिए गए। जिसमें केंद्र सरकार व राज्य सरकार को, अवैध घुसपैठियों को निकालने हेतु, नागरिकता अधिनियम 1955 तथा नागरिकता नियम 2003 को ध्यान में रखना था। भारत सरकार के रजिस्ट्रार जनरल ने 6 दिसंबर , 2013 को एन.आर.सी. हेतु अधिसूचना जारी की।

भारत का उच्चतम न्यायालय 2015 से इसकी निगरानी कर रहा है। माननीय उच्चतम न्यायालय ने 21 जुलाई, 2015 को अपने आदेशों को और भी स्पष्ट किया कि संविधान के अनुच्छेद 144 व अनुच्छेद 142 के परिप्रेक्ष्य में सभी संबंधित पक्ष, राष्ट्रीय नागरिकता रजिस्टर के कार्य में पूर्ण निष्ठा, लगन और गंभीरता से कार्य करें। यह आदेश माननीय उच्चतम न्यायालय ने किसी भी संशय या दुविधा की स्थिति समाप्त करने के लिए दिया।

विगत 30 जुलाई, 2018 को राष्ट्रीय नागरिकता रजिस्टर का फाइनल ड्राफ्ट जारी हुआ, जिसके

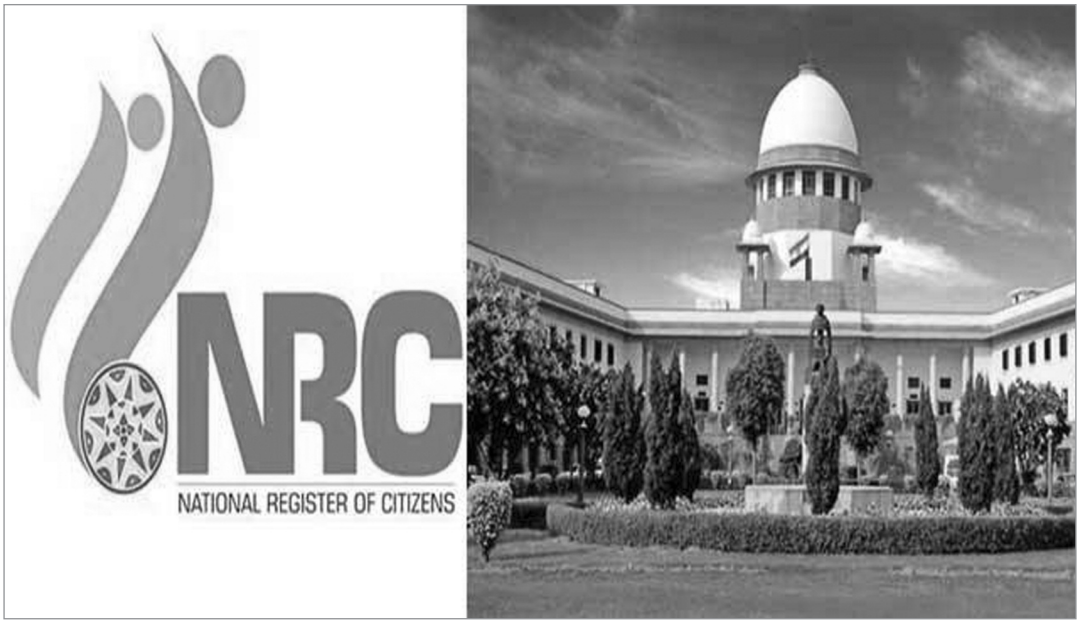

MV_January 2019 final for printing:Layout 1 1/16/2019 5:44 PM Page 28

अनुसार, कुल 3 करोड़ 29 लाख 91 हजार 384 लोगों ने नागरिकता प्रमाण पत्र के लिए आवेदन किया था, जिनमें से 2 करोड़ 89 लाख 83 हजार 677 लोगों के कागजात वैध पाए गए। बचे हुए 40 लाख 07 हजार 707 लोगों का नाम फाइनल ड्राफ्ट लिस्ट में नहीं है।

जिन लोगों के नाम मसौदा सूची में नहीं हैं वे 28 सितंबर, 2018 तक अपने दावे और आपत्तियाँ दर्ज करा सकते थे। यह इस हेतु गठित विदेशी न्यायाधिकरण को समक्ष होगा। उन्हें हाईकोर्ट व उच्चतम न्यायालय में भी चुनौती देने का अधिकार भी रहेगा। उच्चतम न्यायालय ने 19 सितंबर, 2018 के अपने आदेश में, राष्ट्रीय नागरिकता रजिस्टर के प्रारूप (ड्राफ्ट) से बाहर रह गए, लोगों को दावे व आपत्तियाँ दाखिल करने का काम 25 सितंबर, 2018 से पुनः शुरू करने का निर्देश दिया। एन.आर.सी. के समन्वयक प्रतीक हजेला के शपथपत्र के आधार पर 10 दस्तावेजों (15 दस्तावेजों में से 10 दस्तावेज, जिन्हें प्रतीक हजेला ने उचित समझने का शपथ पत्र दिया था) को ही मान्य बताया। न्यायमूर्ति रंजन गोगोई एवं न्यायमूर्ति आर. एफ. नरीमन की पीठ ने आदेश दिया था कि यह प्रक्रिया 25 सितंबर, 2018 से प्रारंभ होकर अगले 60 दिन तक चलेगी। उच्चतम न्यायालय ने 1 नवंवर को एक बार फिर एनआरसी में नाम शामिल करने के लिए दावे और आपत्तियाँ दायर करने की तिथि बढ़ाकर 15 दिसंबर, 2018 तय की है। इसके साथ ही उन पाँच अन्य दस्तावेजों के प्रयोग की भी अनुमति प्रदान की जिन पर पहले प्रतीक हजेला ने आपत्ति व्यक्त की थी। उच्चतम न्यायालय ने दावेदारों को नोटिस जारी करने की अंतिम तिथि 15 जनवरी, 2019 निर्धारित की है।

उच्चतम न्यायालय ने दावे व आपत्तियाँ दाखिल करने की प्रक्रिया के मुद्दे की महत्ता को देखते हुए ही इस कार्य के लिए एक और अवसर प्रदान किया है।

अभी भी यह मामला उच्चतम न्यायालय में है; तथा एन.आर.सी. ठीक से बने; एवं किसी के भी साथ अन्याय न हो, इसको पूर्णतः सुनिश्चित किया जाएगा।

एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न मनोमस्तिष्क में आता है कि

MV_January 2019 final for printing:Layout 1 1/16/2019 5:44 PM Page 29

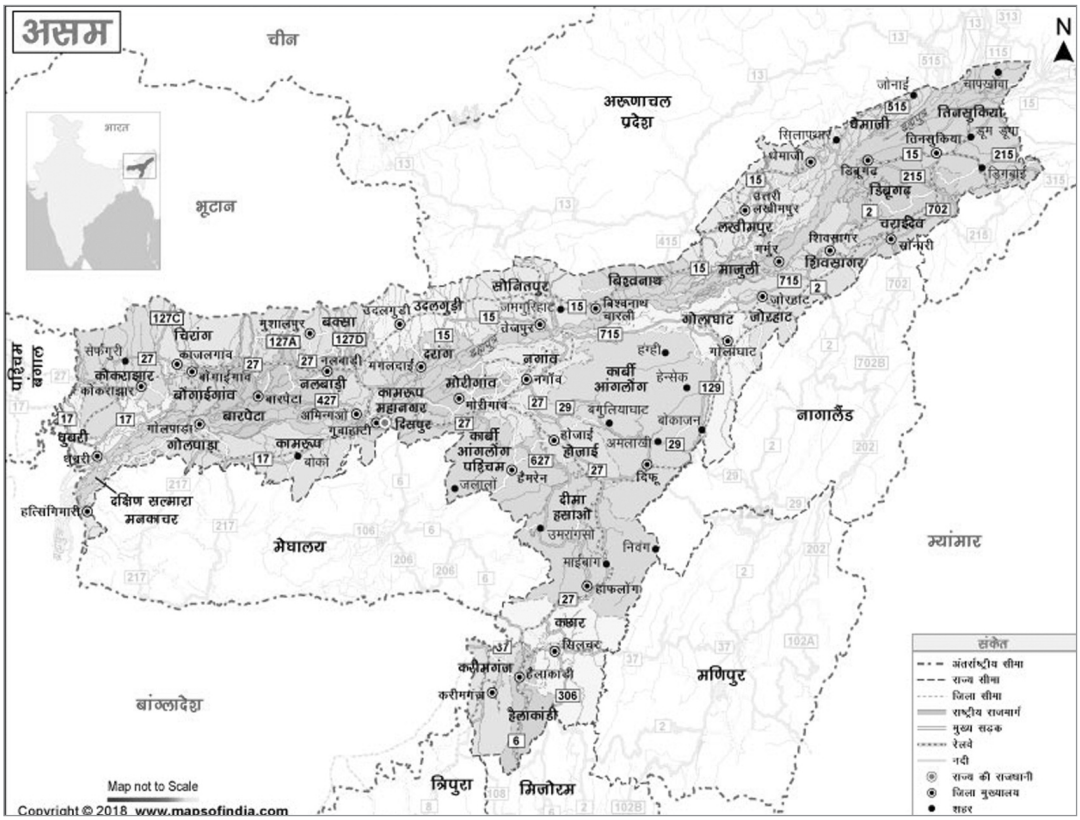

जब 1901 से 1971 के बीच भारत की जनसंख्या में वृद्धि 150 प्रतिशत हुई थी तथा असम में इसी समय में वृद्धि 343.77 प्रतिशत हुई थी। क्या यह आँकड़ा जनसंख्या में असंतुलन की विस्फोटक स्थिति को नहीं दर्शाता? इस प्रकार से जनसांख्कीय बदलाव के पीछे घुसपैठ ही एक मात्र कारण स्पष्ट नजर आती है, फिर भी राजनीतिक फायदे के लिए एन.आर.सी. को ठंडे बस्ते में डाला गया।

1971 में असम में हिंदू 72.5 प्रतिशत थे, जो 2011 की जनगणना के अनुसार घट कर 61.46 प्रतिशत रह गए। वहीं मुसलिम 1971 में 24.56 प्रतिशत थे, जो 2011 में बढ़कर 34.22 प्रतिशत हो गए। ध्यान देने योग्य बात यह है कि 1951 तक असम का कोई भी जिला मुसलिम बहुल नहीं था, लेकिन 2001 तक 6 जिले मुसलिम बहुल हो गए। 2011 की जनगणना के अनुसार जो 9 जिले मुसलिम बहुल हो गए ये जिले हैं–

1. धुबरी (79.6 प्रतिशत),
2. बरपेटा (70.7 प्रतिशत),
3. हैलाकांडी (60.3 प्रतिशत),
4. दरांग (64.3 प्रतिशत),
5. गोलपाड़ा (57.5 प्रतिशत)
6. करीमगंज (56.3 प्रतिशत),
7. मोरी गाँव (52.5 प्रतिशत),
8. नगाँव (55.3 प्रतिशत),
9. बोगई गाँव (50.2 प्रतिशत)

यह स्थिति जनसांख्यकीय परिवर्तन का भयावह चित्र प्रस्तुत करती है।

MV_January 2019 final for printing:Layout 1 1/16/2019 5:44 PM Page 30

पश्चिम बंगाल में हिंदुओं व मुसलिमों की जनसंख्या वृद्धि दर में अंतर

पश्चिम बंगाल	प्रतिशत हिंदुओं की जनसंख्या वृद्धिदर	मुसलिमों की जन संख्या वृद्धि दर
1961-1971	25.75%	29.76%
1971-1981	21.37%	29.55%
1981-1991	21.09%	36.89%
1991-2001	14.23%	25.91%
1991-2011	10.81%	21.81%

असम में हिंदुओं व मुसलिमों की जनसंख्या वृद्धि दर में अंतर

असम	प्रतिशत हिंदुओं की जनसंख्या वृद्धिदर	मुसलिमों की जन संख्या वृद्धि दर
1961-1971	34.49%	29.89%
1971-1991	41.89%	77.42%
1991-2001	14.95%	29.30%
2001-2011	10.89%	29.59%

भारत में हिंदुओं व मुसलिमों की जनसंख्या वृद्धि दर में अंतर

भारत	प्रतिशत हिंदुओं की जनसंख्या वृद्धिदर	मुसलिमों की जन संख्या वृद्धि दर
1961-1971	23.67%	30.84%
1971-1981	21.29%	22.95%
1981-1991	25.08%	34.54%
1991-2001	20.35%	36.02%
2001-2011	16.76%	24.65%

असम में जिस प्रकार से जनसंख्या का संतुलन हिंदुओं के विरुद्ध हुआ, वैसा पश्चिम बंगाल व अन्य राज्यों में भी हुआ है और हो रहा है। आवश्यकता इस बात की है कि भारत का तथाकथित बौद्धिक वर्ग इस समस्या को सही प्रकार से समझे; धर्म निरपेक्षता का तात्पर्य, हिंदू हितों की बलि नहीं होना चाहिए।

असम में अवैध घुसपैठ को स्थानीय नागरिकों ने कैसे अनुभव किया है, उसके दो ज्वलंत उदाहरण 'ओपेन' पत्रिका के 17 सितंबर, 2018 के अंक में दिए गए हैं– ''वर्ष 2009 के किसी समय जब प्रातः सोकर उठे तो देखा कि लगभग 300 मकान बने हुए हैं जो कि नदी (ब्रह्मपुत्र) के उस पार से आए लोगों ने रातों-रात बना लिए थे।'' ऐसा ज्योति प्रसाद हजारिका जी मयोंग के हातिमुरिया गाँव के हैं, कहते हैं कि हमें नहीं मालूम था कि ये लोग कौन हैं, बाद में पता चला कि ये लोग पहले से बने हुए टिन की छतें व लकड़ी इत्यादि नावों की सहायता से नदी (ब्रह्मपुत्र) के उस पार से लाए थे।'' (पृ. 18) तथा 80 वर्षीय दयाराम बोडो बताते हैं कि मुझे 1983 की घटना याद है (तिथि नहीं याद है) जब एकाएक ये लोग (बांगलादेशी घुसपैठिये) पता नहीं कहाँ से आ गए, वे बड़ी संख्या में थे। हम लोग अपने ही गाँव से निकाल दिए गए। (पृ. 21)

जनसंख्या का इस प्रकार से आक्रमण, असम के मूल निवासियों के निवास-स्थान व सम्पत्ति ही नहीं, उनकी समृद्ध संस्कृति के भी क्षरण के माध्यम बने। असम का मूल सांस्कृतिक तत्त्व नष्ट करने के लिए यह घुसपैठ काम कर रही है।

अस्तु, राष्ट्रीय नागरिकता रजिस्टर की महती आवश्यकता विभिन्न स्तरों पर और पूरे असमी समाज ने महसूस की। फिर आंदोलनों, बौद्धिक लेखों व न्यायिक प्रक्रिया के द्वारा, इसके लिए असमी समाज

MV_January 2019 final for printing:Layout 1 1/16/2019 5:44 PM Page 31

जाग्रत रहा। यदि अन्य राज्यों में भी, जहाँ विदेशी घुसपैठ, बड़ी संख्या में है, उनमें जागरूकता आती है तो हमारी मूल्यवान संस्कृति संरक्षित रहेगी।

किसी भी राष्ट्र की मूल आत्मा, चिति, संस्कृति व समान पूर्वजों के प्रति सम्मान का भाव ही उस राष्ट्र का प्राणतत्त्व व प्राणवायु होता है। हिंदू जीवन पद्धति इस राष्ट्र का प्राणतत्त्व है। यदि जनसंख्या संतुलन हिंदुओं के विरुद्ध होता है तो राष्ट्र का भौतिक, आध्यात्मिक व राजनीतिक स्वरूप पतित हो सकता है। इसलिए राष्ट्रीय नागरिकता रजिस्टर की आवश्यकता न केवल असम बल्कि भारत के सभी राज्यों को है, जिससे घुसपैठ की समस्या पर अंकुश लग सके।

(लेखक इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज के अर्थशास्त्र विभाग के पूर्व प्रवक्ता हैं।)

ऑल असम स्टूडेंट यूनियन की राष्ट्रीय नागरिकता रजिस्टर के प्रति जागरूकता रैली

MV_January 2019 final for printing:Layout 1 1/16/2019 5:44 PM Page 32

भगवान् पशुपतिनाथ मंदिर
काठमांडू

समाज में आजकल एक प्रकार से ऐसा लगता है कि धार्मिक आस्था बढ़ रही है। मंदिरों का निर्माण, तीर्थस्थलों पर बढ़ती भीड़, श्रीमद्भागवत तथा अन्य पुराणों का वाचन, रामायण कथा, भक्ति चैनलों की बढ़ती संख्या, विदेशों में हिंदू धर्म के प्रति बढ़ती जिज्ञासा आदि कुछ लक्षण हैं जो इस बात की पुष्टि करते हैं, परंतु सामान्य जन हिंदू सनातन धर्म का स्थूल रूप ही समझ रहे हैं। सूक्ष्म तथा तात्त्विक रूप की समझ बढ़ाने के पर्याप्त प्रयत्न नहीं हो रहे हैं। विद्वान लेखक *दामोदर शाण्डिल्य* ने द्वादश ज्योतिर्लिंगों की यात्रा के उपरांत हाल ही में श्रीपशुपतिनाथ (काठमांडू) की यात्रा कर, पाठकों के लाभार्थ, प्रस्तुत लेख लिखा है, जिसमें उन्होंने शैव उपासना का तात्त्विक अर्थ समझाने का प्रयत्न किया है।

MV_January 2019 final for printing:Layout 1 1/16/2019 5:44 PM Page 33

दामोदर शाण्डिल्य

काठमांडू का अनुपम दिव्य धाम

भुक्ति-मुक्ति प्रदाता पशुपतिनाथ

शास्त्रीय प्रमाण या शास्त्राज्ञा तथा लोकमानस की आस्था में कई बार बड़ा अंतर दृष्टिगत होता है। सामान्य सनातनी हिंदू-मानस में यह आस्था है कि द्वादश ज्योतिर्लिंगों के दर्शन के बाद भगवान् पशुपतिनाथ के काठमांडू (नेपाल) स्थित शिव-विग्रह के दर्शन किए बिना ज्योतिर्लिंग दर्शन का प्रयोजन पूरा नहीं होता। जैसे पुष्कर तीर्थ की मान्यता है वैसे ही पशुपतिनाथ के बारे में जनमानस में यह आस्था है। इसी कारण लाखों श्रद्धालु काठमांडू (नेपाल) की यात्रा करते हैं। हालाँकि यह बात सत्य है कि शिवपुराण तथा अन्य साहित्य में पशुपतिनाथ धाम की गणना न तो द्वादश ज्योतिर्लिंग में आती है और न द्वादश उपज्योतिर्लिंगों में ही। फिर भी इस अगाध जन आस्था का कोई तो कारण होगा? इसका मूल कारण है, यहाँ शिव के पंचमुखी प्रतिमा के दर्शन होना।

निराकार तथा साकार स्वरूप : भगवान शिव के दो स्वरूप हैं– एक निराकर तथा दूसरा साकार। शिवलिंग पिंडी शिव का निराकार, निष्कल स्वरूप है। गोलाई का कोई निश्चित आकार नहीं होता। यह सृष्टि मंडलाकार है (अखंड मंडलाकारं व्याप्तं येन चराचरं) सभी ग्रह नक्षत्र मंडलाकार हैं। इन सभी का भ्रमण-परिभ्रमण पथ मंडलाकार है, परमाणु के इलेक्ट्रॉन का परिभ्रमण मंडलाकार है। जो ब्रह्म इस सृष्टि में व्याप्त है, यह सृष्टि उस ब्रह्म का स्वरूप है। व्याप्त/व्यापक न्याय से सृष्टि को ब्रह्म से अलग नहीं कर सकते। इस

कारण शिवलिंग ब्रह्म के निराकार रूप का प्रतीक है। शिव का पंचमुखी स्वरूप साकार या सकल रूप है। शिव पुराण विद्येश्वर संहिता अ. 9 में लिखा है ''शिव का लिंग रूप ब्रह्मभाव का निष्कल रूप है तथा महेश्वर (पंचमुखी) भाव सकल रूप है।'' शिवलिंग को साक्षात् निराकार ब्रह्म का प्रतीक माना है।

शैव तथा माहेश्वर : शिव पुराण वायवीय संहिता अ. 28 के अनुसार –''जो मनुष्य शिव के आश्रित रहकर ज्ञानयज्ञ में तत्पर होते हैं वे शैव कहलाते हैं और जो शिवाश्रित भक्त भूतल पर कर्म-यज्ञ में संलग्न रहते हैं; वे महान् ईश्वर का यजन करने के कारण माहेश्वर कहे गए हैं।'' माहेश्वर शैव संप्रदाय है और पंचमुखी शिव उनके आराध्य हैं।

शैव तंत्र के अनुसार शिव के अंक में इच्छाशक्ति, दक्षिण भाग में ज्ञानशक्ति तथा वाम भाग में क्रियाशक्ति है। जो सृष्टि के सृजन, पालन तथा संहार का कारणभूत होती है। तंत्रशास्त्र के अनुसार शिव प्रतिमा आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व तथा शिवतत्त्व की प्रतीक है।

पंचमुखी शिव प्रतिमा: सभी द्वादश ज्योतिर्लिंग शिव के निराकार स्वरूप में है। पशुपतिनाथ (काठमांडू) पंचमुखी साकार प्रतिमा है। भारत में अन्य कई स्थानों पर भी पंचमुखी शिव प्रतिमाएँ हैं। शास्त्रों के अनुसार शिव की पंचमुखी प्रतिमा परब्रह्म की पाँच शक्तियों या कलाओं की प्रतीक है। ब्रह्म की पाँच शक्तियाँ या कलाएँ हैं–चित्, आनंद, इच्छा, ज्ञान तथा क्रिया। इन शक्तियों के भावों के प्रतीक हैं शिव के पाँच मुख। पूर्व मुख– तत्पुरुष, दक्षिण मुख– अघोर, पश्चिम मुख– सद्योजात, उत्तर मुख– वामदेव तथा ऊर्ध्व मुख–ईशान। इन पाँचों मुखों के भाव, स्वरूप शृंगार भिन्न-भिन्न हैं। पूर्व मुख का नाम तत्पुरुष है जो त्रिनेत्र अरुण प्रभा युक्त बालार्क रूप है। दक्षिण मुख अघोर का वर्ण नील जलधारा के समान, श्याम प्रभा भ्रमरवत है जो कुटिल-भ्रूभंग रौद्र तथा विकराल रूप में है। शैव तंत्र में शिव का दक्षिण मुख योगिनी-वक्त्र कहा जाता है। यह शिव और शक्ति का अद्वय संघट्ठ रूप है। यह दक्षिण मुख हार्दलिंग सर्व संहारक है इसीलिए काला तथा तिमिर रूप है। पश्चिम मुख का नाम है–सद्योजात। इनका वर्ण पूर्ण चंद्र के समान कुंद धवल, सौम्य, मंदस्मित है। उत्तर मुख का नाम है– वामदेव, जो मूंगे के रंग के पांडुरंग तथा स्वर्ण आभ है।

पंचमुखी शिवलिंग भगवान् पशुपतिनाथ मंदिर काठमांडू

MV_January 2019 final for printing:Layout 1 1/16/2019 5:44 PM Page 35

ऊर्ध्व मुख का नाम है– ईशान, जो चिद्रूप तथा निर्वाणरूप है, स्फटिक मणि के समान उज्ज्वल और चन्द्रलेखा युक्त है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने शिव जी के इस ईशान रूप की ही रुद्राष्टक में वंदना की है- -'नमामीश ईशान निर्वाण रूपं, विमुख, व्यापकम् ब्रह्म, वेद-स्वरूपम्' (स्तोत्र : पंचवक्त्र पूजा में ध्यान मंत्र)। श्री शैलम मल्लिकार्जुन में भगवान् शिव के इन पंचमुखी भाव के अलग-अलग शिवलिंग रूप में मंदिर हैं।

पशुपतिनाथ– भुक्ति, मुक्ति के दाता : पशुपतिनाथ में लोक आस्था का प्रधान कारण इनका ऐहिक भोग तथा परमार्थ योग (मोक्ष) के दाता का होना है। शिवपुराण वायवीय संहिता अ.25 के अनुसार– ''मोक्षकामी को शिव के निराकार रूप की उपासना करनी चाहिए और ऐहिक भोग तथा कामनापूर्ति के लिए शक्ति (पार्वती) सहित पंचमुखी साकार स्वरूप की उपासना करनी चाहिए।'' चूंकि नेपाल अतीत काल से शैव उपासना का केंद्र रहा है, योगी गोरखनाथ तथा अन्य नाथ सिद्धों की तपोस्थली रहा है, अतः पंचमुखी शिवोपासना की यहाँ प्रधानता रही है। इसी कारण यह हिंदू-आस्था का केंद्र रहा है।

गत हरतालिका-तृतीया, दि. 13 सितंबर, 2018 को हम काठमांडू में थे। उस दिन पशुपतिनाथ मंदिर में पुरुषों का प्रवेश निषेध था। स्त्रियों का तीज पर्व था। पूरे नेपाल से 2-3 लाख स्त्रियाँ काठमांडू में थी। मंदिर में दर्शन को दो मील लंबी लाइन थी। पूरा शहर लाल साड़ी में सज्जित महिलाओं से भरा था। आस्था का ऐसा सैलाब अन्यत्र कहीं देखने को नहीं मिलता।

पशुपति भाव : शैव दर्शन के अनुसार प्रत्येक मानव (जीव) मूलतः पशु भाव में ही होता है। तीन मल तथा तीन पाश (आणव, माया तथा कार्म मल) से बद्ध जीव पशु संज्ञा वाला ही है। सरल शब्दों में अविद्या, अज्ञान, माया बद्ध जीव 'पशु' ही है। इन पाशबद्ध जीवों को ज्ञान का प्रकाश देकर चैतन्य करना ही पशुभाव से मुक्ति है। लोक कथा है कि एक बार भगवान् शिव माता पार्वती सहित हिमालय की उपत्यकाओं में भ्रमण कर रहे थे। नेपाल के इस क्षेत्र का नैसर्गिक रमणीय सौंदर्य देख कर मृग रूप धारण कर यहाँ विचरण करने लगे। कैलाश पर देवताओं और ऋषियों को इन्हें न पाकर सब चिंतित हुए और इन्हें खोजना प्रारंभ किया तो देवों को भगवान् शिव यहाँ विचरण करते मिले। देवों और ऋषियों की प्रार्थना पर वे वापस कैलाश लौट तो गए, पर अपना पशुपति रूप यहाँ छोड़ गए। वे ही पशुपतिनाथ यहाँ विराजमान हैं।

यह एक लोक कथा हो सकती है जो पुराणशैली में जन सामान्य को समझाने के लिए कही गई हो। पर यथार्थ भाव यह ही है कि मायाबद्ध, अविद्या युक्त सुप्त जीव पशु ही है और उस अविद्या, माया, निद्रा से मुक्त कर जीव को पशु भाव से मुक्त करने वाले ही पशुपतिनाथ हैं।

शिवोपासना साहित्य में पशुपति शब्द बहुत ही गरिमा और गंभीरता से लिया गया है। पुष्पदंत जी कृत 'शिव महिमा स्तोत्र' में 28वें श्लोक में कहा है– ''भव शर्वो रुद्र पशुपति।''शिव पुराण में भगवान विष्णु द्वारा गाए गए शिव सहस्रनाम स्तोत्र में आया है–''उग्रः पशुपति तार्क्ष्य परंतपः''। शिव के 108 नाम में भी कहा गया है–'ॐ पशुपतये नमः।' रुद्राभिषेक के समय अष्टमूर्ति पूजा में एक मंत्र है– 'ॐ पशुपतये यजमान मूर्तये नमः'। यहाँ यजमान मूर्तये का अर्थ ब्रह्म मूर्ति है। पंच तत्त्व तथा सूर्य तथा सोम भी शिव-मूर्ति ही हैं। वैदिक एकादश रुद्र में एक का नाम पशुपति है। रुद्राष्टध्यायी के पंचम अध्याय में श्लोक 17 में मंत्र है– ''पशुनाम् पतये नमो नमः'' (जीवों का पालन करने वाले रुद्र के लिए नमस्कार है।) सातवें अध्याय में ऋषि अपना हृदय शिव को अर्पित करते हुए कहते हैं– ''पशुपतिङ् कृत्स्न

MV_January 2019 final for printing:Layout 1 1/16/2019 5:44 PM Page 36

भगवान् मुक्तिनाथ
नेपाल

हृदयेन।'' इस प्रकार अन्य भावों की तुलना में हिंदू उपासना में चतुर्विध पुरुषार्थ (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) के दाता पशुपति भाव को प्रधानता दी गई है। पंचमुखी शिव प्रतिमा तंत्रशास्त्र की दृष्टि से सदाशिव चक्र है। इसी के 64 भेद हैं जो 64 शिवागम कहलाते हैं। शैवतंत्र सबसे प्राचीन तंत्र है इसी से शाक्त, सौर, भैरव, वैष्णव, बौद्ध व जैन तंत्र विकसित हुए हैं।

पशुपतिनाथ के विग्रह की संरचना : शिवलिंग तथा पंचमुखी शिव विग्रह दोनों की संरचना एक-सी होती है। दोनों में जलेरी एक सी होती है। दोनों ही (प्रतिमा तथा जलेरी) एक ही पत्थर से गढ़ी जाती हैं। निराकार रूप में जलेरी के ऊपर चिह्न (लिंग) रहता है। साकार रूप में पंचमुखी साकार प्रतिमा होती है। जलेरी और शिव, शक्ति और शिव के अद्वैत भाव के प्रतीक हैं। आदि शंकराचार्य जो मूलतः शैव ही थे, की रचना 'आनंदलहरी' के एक श्लोक का भाव यह है- -''वेद के अनुसार माया बीज ही भगवती पराशक्ति का नाम है। यह पराशक्ति ही जगन्माता, जगज्जननी, महामाया, योगमाया, मूलप्रकृति, त्रिपुरा, त्रियोनी रूपा है। शिवलिंग विग्रह का यह ही भाव है। शिवलिंग का आधार जलेरी ही माया बीज भगवती पराशक्ति है तथा निराकार शिव लिंग (चिह्न) निर्विकार अक्रिय परब्रह्म का प्रतीक है। पशुपतिनाथ के दर्शन, उपासना, भक्ति से प्राप्त शिव ज्ञान से, आणव, माया, कार्म पाशों से मुक्त आत्मा शिवरूपा हो जाती है। इसीलिए मोक्षकामी जीव शिव के ईशान स्वरूप की उपासना करते हैं।

उज्जैन के महाकाल अघोर रूप दक्षिणमुखी हैं। शिव का यह स्वरूप सभी ऋद्धि-सिद्धियों का दाता तथा मारण, उच्चाटन, सम्मोहन आदि कामनापूर्ती की क्रियाओं का साधक है। सृष्टि संहार का अभिप्रेय भी शिव का अघोर भाव है। सद्योजात तथा वामदेव स्वरूप, ज्ञान तथा आनंदरूपा है। इस प्रकार काठमांडू स्थित भगवान् पशुपतिनाथ का सर्वार्थ सिद्ध स्वरूप ऐहिक भोग और अपवर्ग योग (मोक्ष) के दाता होने के

MV_January 2019 final for printing:Layout 1 1/16/2019 5:44 PM Page 37

कारण ज्योतिर्लिंग न होते हुए भी ज्योतिर्लिंग की सी महिमा इस धाम को प्राप्त है।

काठमांडू की यात्रा : नेपाल सदियों से स्वतंत्र हिंदू देश रहा है। राजशाही तक हिंदू सनातन धर्म ही यहाँ का राजधर्म था। नेपाल कभी विदेशी आक्रांताओं के अधीन नहीं रहा। नेपाल-भारत मुक्त सीमा क्षेत्र है। भारतीयों के लिए वीसा, परमिट की आवश्यकता नहीं होती। हवाई-मार्ग से जाने पर हवाई अड्डे पर पहचान पत्र के रूप में केवल निर्वाचन आयोग का मूल पहचान पत्र दिखाना होता है। नेपाल के प्रमुख तीर्थ स्थलों में मुक्तिनाथ का बड़ा महत्त्व है। यह काठमांडू से 250-300 कि.मी. दूर पहाड़ों में है। केदारनाथ जैसी दुर्गम चढ़ाई है। यह मोक्ष, मुक्ति प्रदाता भगवान् विष्णु का धाम है। बूढ़ा नीलकंठ धाम में भगवान् विष्णु की शयन मुद्रा में विशाल प्रतिमा है। चन्द्रगिरि पर्वत रोप-वे की यात्रा बड़ी रोमांचक है। बादलों के बीच में से ट्राली का गुजरना बड़ा आह्लादकारी है, पहाड़ी पर पहाड़ी-शैली का भव्य शिव मंदिर है। शिखर से भक्तपुर का विहंगम दृश्य बड़ा सुखद एहसास कराता है। सांगा पहाड़ी पर पर्यटन स्थल विकसित किया गया है, जहाँ 150-200 फीट ऊँचाई पर विशाल भव्य शिव प्रतिमा है, जो रात्रि को रोशनी में बहुत भव्य लगती है। डोलेश्वर महादेव स्थान पर कहते हैं कि शिव के नंदी स्वरूप का सिर प्रस्थापित है। भूकंप में यह मंदिर ध्वस्त हो गया था। माता जानकी की जन्मस्थली जनकपुर भी यहाँ ही है।

नेपाल बौद्ध मत का भी केंद्र रहा है। भगवान् बुद्ध की जन्मस्थली लुम्बिनी यहाँ ही है। स्वयंभूनाथ में बौद्ध स्तूप है जो बौद्ध मतावलंबियों का श्रद्धा केंद्र है। पर्यटन की दृष्टि से पोखरा आदि अनेक पर्यटन स्थल हैं।

काठमांडू सड़क मार्ग से पटना, गोरखपुर, रक्सौल से जाया जा सकता है। हवाई मार्ग अंतर्राष्ट्रीय है। स्थानीय आवागमन के लिए भी नेपाल में कई हवाई अड्डे हैं, जहाँ छोटे विमान चलते हैं।

आवास, भोजन, आवागमन के साधन सुलभ हैं। नेपाली मुद्रा भारतीय 100 रुपये के 160 रुपये के बराबर है। शाकाहारी भोजन भी उपलब्ध है। पशुपति क्षेत्र में भारत से गए मारवाड़ी व्यापारियों की कई सेवा संस्थाएँ हैं। मारवाड़ी सेवा समिति तथा माहेश्वरी समाज के अपने भवन हैं, जहाँ निवास तथा भोजन की व्यवस्था है।

प्रकृति की सुंदर उपत्यका में बसा नेपाल भक्ति और शक्ति का केंद्र है। देशाटन तथा तीर्थाटन दोनों दृष्टियों से दर्शनीय है।

(लेखक भारतीय दर्शन के मर्मज्ञ विद्वान हैं।)

माता जानकी मंदिर जनकपुर, नेपाल

MV_January 2019 final for printing:Layout 1 1/16/2019 5:44 PM Page 38

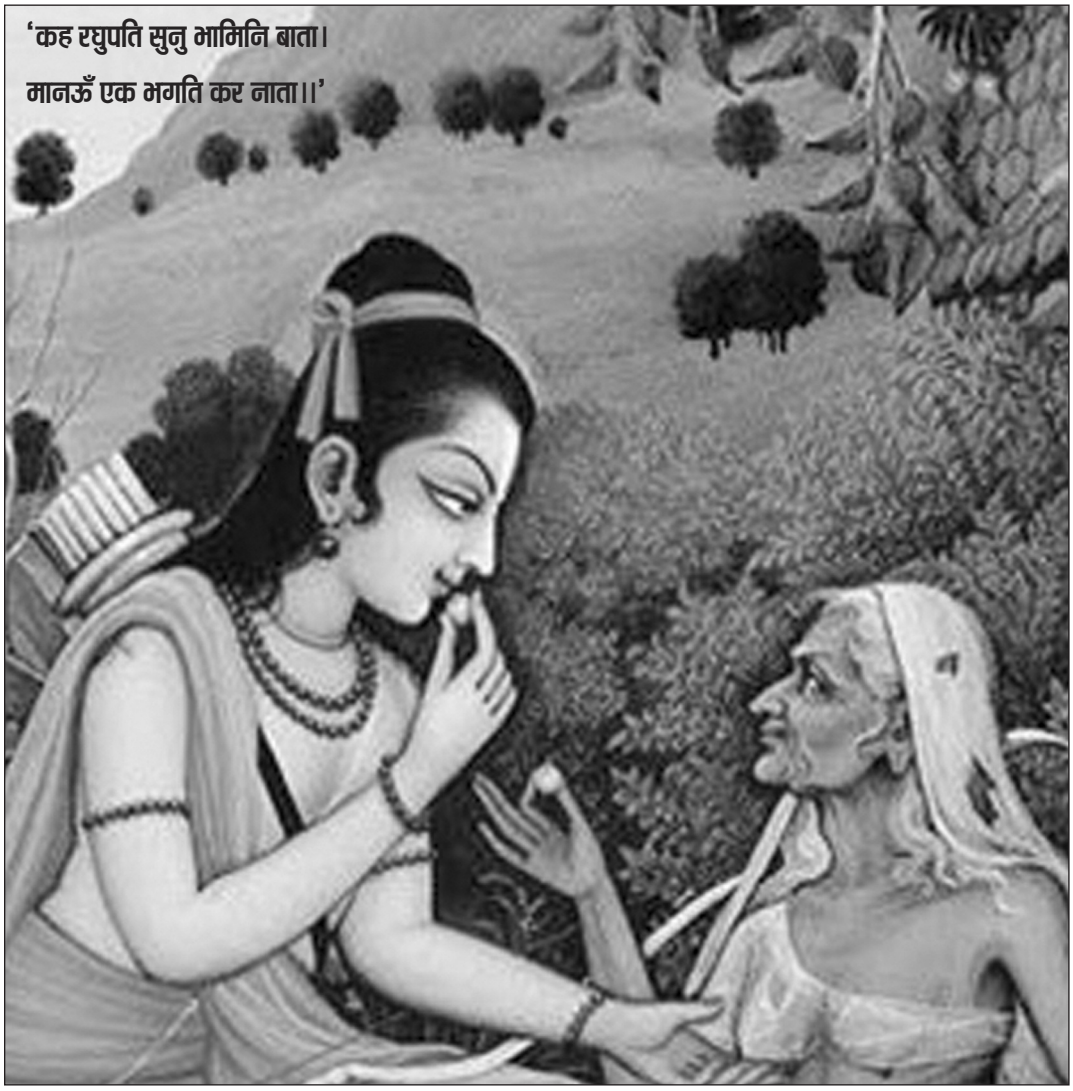

समाज में व्याप्त ऊँच-नीच का भाव मानवीय गरिमा के विरुद्ध है और बहुत ही कष्टदायक है। जो संस्कृति 'हरि व्याप्त सर्वत्र समाना' की संदेशवाहक हो और जहाँ भगवान् श्रीराम निशादराज केवट को गले लगाते हुए कहते हैं 'तुम मम सखा भरत सम भाई' उस संस्कृति को मानने वाले समाज में ऊँच-नीच का भाव कब, कैसे और क्यों आया यह भले ही शोध का विषय हो परंतु विद्वत समाज ने हमेशा ही इस भावना के विरुद्ध आवाज बुलंद की और 'जाति-पाँति पूछे नहीं कोई' का शाश्वत् संदेश समाज को दिया। इस संदेश की पूर्व भूमिका और आज पुनः इसकी आवश्यकता को प्रतिपादित कर रही हैं विदूषी लेखिका *डॉ. चंदन कुमारी* –

MV_January 2019 final for printing:Layout 1 1/16/2019 5:44 PM Page 39

डॉ. चंदन कुमारी

वर्ण, धर्म और भक्ति हरि को भजे सो हरि का होई

क्षिति, जल, पावक, गगन और समीर- इन पंचभूतों की समनिर्मिति है–समग्र सृष्टि। फिर भेद-भाव वाली द्वैतबुद्धि का औचित्य कैसा! गोस्वामी तुलसीदास के काव्य में वर्णाश्रम धर्म की मर्यादा झलकती है। उस वर्णाश्रम धर्म का मूल स्वरूप मानों आज धूमिल हो गया है और उसके भ्रामक संस्करण को गले लगाकर सनातन धर्म के पालन का दंभ भरा जा रहा है। स्वामी रामानंद की उक्ति 'जाति-पाँति पूछे नही कोई। हरि को भजे सो हरि का होई।' की तर्ज पर ही तुलसी के राम शबरी से कहते हैं– 'कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। मानऊँ एक भगति कर नाता।।' - ('रामचरितमानस', 3/34/2) और केवट को गले लगाते हुए कहते हैं-'तुम मम सखा भरत सम भ्राता। सदा रहेहु पुर आवत जाता।।' - ('रामचरितमानस', 7/ 19 ग/2) स्वयं राम भी सबसे ऊपर 'नेह का नाता' मानते हैं फिर भला उनको भजने वाले कुतर्क के दलदल में क्यों फँसना चाहते हैं? शिव कहते हैं– 'हरि व्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम ते प्रगट होहिं मैं जाना।।' जो स्वयं सृष्टि के कण-कण में समरूप अवस्थित है, भला उसकी सृष्टि में विषमता कब और कैसे व्याप्त हुई? यह प्रत्यक्ष नजर आनेवाली विषमता मानव की अपनी दुर्बलताओं की सृष्टि है। ''भक्ति और मानवता समन्वित वर्णाश्रम धर्म की प्रतिष्ठा जो रामकाव्य में की गई है वह पतनोन्मुख समाज को पतन से बचाने का एक प्रमुख हथियार है ... यहाँ प्रतिपादित वर्णाश्रम धर्म श्रुतिसम्मत है। श्रुति 'वर्ण' का आधार जन्म को नहीं मानती, कर्म और गुण को मानती है। यह जन्म आधारित वर्ण वाली भावना दुर्बल आग्रहियों की है। क्रांतदर्शी ऐसा कहाँ कहते! अवश्य तुलसी ने ब्राह्मणों की वंदना की है। पर वे वंदित ब्राह्मण कौन हैं? जो मनुष्य अपरिग्रही, अनासक्त , क्षमाशील, शांत, सौम्य, व्रती,

शीलवान, संयमी, प्रज्ञावान, सत्यनिष्ठ, निर्वैर, आशाओं से परे, ऋषभ (श्रेष्ठ), कुमार्ग और सद्मार्ग का ज्ञाता है वही ब्राह्मण हैं।'' (राम भक्तिकाव्य में लोकपक्ष, पृ. 87)

गुण और कर्म की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए ही चार वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) का विधान किया गया है। जो जितनी तन्मयता से अपने वर्णगत् कार्य को संपादित करता है, वह उतना ही श्रेष्ठ है और जिसकी कार्य संपादन वृत्ति में तन्मयता का अभाव होता है; वह कमतर समझा जाता है। इस संदर्भ में 'रामचरितमानस' की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं–

सोचिअ विप्र जो बेद बिहीना।
तजि निज धरमु विषय लयलीना ।।
सोचिअ नृपति जो नीति न जाना।
जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना ।। *(2/171/2)*
सोचिअ बयसु कृपन धनवानू । (2/171/3)
बादहिं सूद्र द्विजन्ह सन हम तुम ते कछु घाटि।
जानि ब्रह्म सो बिप्रबर आँखि देखावहिं डाटि।।
(7/99 ख)

महात्मा गांधी ने कहा है, मेरा विश्वास है कि प्रत्येक व्यक्ति कुछ विशिष्ट प्रवृत्तियों के साथ जन्म लेता है, जिन पर उसका वश नहीं होता। उन परिसीमाओं के मनयोगपूर्वक अवलोकन से ही वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति हुई, जिसके अनुसार कुछ व्यक्तियों की विशिष्ट प्रवृत्तियों को देखते हुए उनका कर्म-क्षेत्र निर्धारित किया गया।

राम की भक्ति के नाम पर स्वामी रामानंद ने मानव निर्मित जाति-पाँति की कृत्रिम दीवार को ढहा दिया। भक्ति के क्षेत्र में एक क्रांतिकारी सकारात्मक परिवर्तन आया। एक प्रसिद्ध उक्ति है जिसके अनुसार माना जाता है कि भक्ति दक्षिण में उपजी–

'प्रगट किया कबीर ने सप्त द्वीप नव खंड। भक्ति द्राविड़ उपजी लायो रामानंद।'

एक दूसरा सत्य यह है कि सात्वत, पाँचरात्र, भागवत और एकांतिक नाम से जाने जानेवाली वैष्णव भक्ति का बीज उत्तर भारत में ई.पू. तीसरी-चौथी से पहली शती तक वासुदेव की उपासना के रूप में मौजूद था। वासुदेव के ये उपासक मथुरा के पास की ब्रज भूमि में रहने वाले सात्वत जाति के थे। कालांतर में सात्वतों की एकांतिक वासुदेवोपासना ही कृष्ण भक्ति के रूप में लोकव्यापी हुआ। 'जर्नल ऑफ दि रॉयल एशियाटिक सोसाइटी' (1915) में उल्लेख है कि ''श्रीकृष्ण की भावना का आविर्भाव ईसा की चौथी सदी के पूर्व ही हो चुका था। श्रीकृष्ण के अनेक नामों में वासुदेव नाम भी था। स्पष्ट है कि भक्ति का बीज उत्तर भारत में पहले से ही मौजूद था। धान वृक्षारोपण की भाँति भक्ति के नन्हे-नन्हे पौधों को समुचित पल्लवन के अवसर प्राप्ति हेतु ये सात्वत उसे लेकर दक्षिण की ओर गए। ... अतः शिशु रूप में वैष्णव भक्ति सात्वत भक्तों के साथ ही उत्तर से दक्षिण में गई और आलवार संतों के अनुराग की छाया तले प्रौढ़ स्वरूप में पुनः आचार्य रामानंद के संग उत्तर भारत में आई । आचार्य परशुराम चतुर्वेदी भी इससे सहमत हैं।'' (राम भक्तिकाव्य में लोकपक्ष, पृ.16-17)। डॉ. मुंशीराम शर्मा और डॉ. पी जयरामन भी इस तथ्य से सहमत हैं। डॉ. बलराज शर्मा भी मानते हैं कि बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार और संघर्ष के कारण उत्तर भारत में कुछ समय तक भागवत धर्म की गति कुंठित रही। परंतु दक्षिण में यह फल-फूल रहा था। (मध्यकालीन काव्यधाराएँ एवं प्रतिनिधि कवि भाग-1)। आलवार भक्त कवियों ने एक ओर मधुर भाव की प्रतिष्ठा की तो दूसरी ओर भक्ति के माध्यम से सामाजिक खाई को पाटने का प्रयास भी किया। प्रपत्ति-भावना प्रधान आलवारों को भगवद्नुग्रह पर अकूत भरोसा था। प्रभु

MV_January 2019 final for printing:Layout 1 1/16/2019 5:44 PM Page 41

की कृपा कटाक्ष पाने के लिए विह्वल आलवार भक्तों ने विष्णु के अवतारों की स्तुति भेद और द्वैत के बिना की है। यहाँ विष्णु, राम, कृष्ण और रंगनाथ सब एक हैं। (राम भक्तिकाव्य में लोकपक्ष, पृ.21-22)। देवों का यह ऐक्य 'मत्स्य पुराण' (172) के निम्नोद्धृत श्लोक में भी स्पष्ट दिख रहा है–

विष्णुत्वं शृणु विष्णोश्च हरित्वं च कृते युगे।
वैकुंठत्वं च देवेषु कृष्णत्वं मानुषेषु च ।।1।।
ईश्वरस्य हि तस्यैषा कर्मणा गहना गतिः ।
संप्रत्यतीतान्भवयांश्च शृणु राजन्य थातथम ।।2।।
अव्यक्तो व्यक्त लिंगस्थो य एष भगवान्प्रभुः ।
नारायणो हय्नंतात्मा प्रभवोअव्यय एव च ।।

इस एक विराट् सत्ता की शरण में सारी सृष्टि मुदित है, सुरक्षित है! शरणागत की रक्षा करने का उत्तरदायित्व केवल देवों तक ही सीमित नहीं है, मनुष्यों के लिए भी शरणागत की रक्षा का विधान 'रामचरितमानस' में द्रष्टव्य है–

शरणागत कहूँ जे तजहिं निज अनहित अनुमानि।
ते नर पाँवर पापमय तिन्हहिं बिलोकत हानि।

पुनः देखें

'सर्वे प्रपत्तेरधिकारिणः सदा,
शक्ता अशक्ता अपि नित्यरंगिण।
अपेक्ष्यते तत्र कुलं बलं च नो,
न चापि कालो न हि शुद्धता च।।'

भगवान् श्रीरामानंद स्वामीजी अपने शिष्यों के प्रति कहते हैं कि भगवान् अपनी प्रपत्ति में जीवों के कुल, जाति, बल और काल शुद्धता की अपेक्षा नहीं करते, इसी कारण समर्थ-असमर्थ सभी जीव भगवान् की शरणागति के अधिकारी हैं। (बलभद्रदास कृत हिंदी रूपांतरण, वैष्णवमताब्ज -भास्कर, 100वाँ श्लोक उद्धृत पुरुषोत्तम अग्रवाल, अकथ कहानी प्रेम की, पृ.271)

स्वामी रामानंद अपने ग्रंथ 'वैष्णवमताब्जभास्कर' में रामभक्ति का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि तेल की अविच्छिन्न धारा के सदृश निरंतर प्रेमसहित राम का स्मरण ही भक्ति है। इस भक्ति की प्राप्ति के सात साधन हैं। विवेक, अकाम, ध्यान, अनुष्ठान (पंचमहायज्ञ), कल्याण (सत्य, सरलता, दान, दया), अनवसाद एवं अनुद्धर्ष। इस आशय का श्लोक द्रष्टव्य है।

सा तैलधारासमनित्यसंस्मृतिः
संतानरुपेशि परानुराक्तिः।
भक्तिर्विवेकादिकसप्तजन्या तथा
यमाद्यष्टा सुबोधकांगा ।।65।।

(उद्धृत डॉ. मुंशीराम शर्मा, भक्ति का विकास, पृ. 333)।

भक्ति के लिए निर्मल मन ही सर्वोत्तम साधन है। 'रामचरितमानस' में नवधा भक्ति का उल्लेख है। राम भक्ति की हर धारा (निर्गुण, सगुण-मर्यादा, माधुर्य और योगपरक) के मूलस्रोत स्वामी रामानंद की हिंदी रचनाओं को डॉ. पीतांबर दत्त बड़थ्वाल ने 'रामानंद की हिंदी रचनाएँ' नाम से संपादित किया है। श्री संप्रदाय का आचार्य बनना इनका अभीष्ट न था। वे तो सामाजिक वैषम्य को मिटाने हेतु प्रयत्नरत हुए। उन्होंने भक्ति मार्ग से लोकमंगल की साधना की। लोक का लोक से लोकभाषा में सहज संबंध बन जाने की स्थितियाँ उत्पन्न की। लोकजीवन में अनुराग और विश्वास भरने वाले इन्हीं संत की वंदना नाभादास के शब्दों में–

विश्वमंगल आधार भक्ति के श्रद्धा के आगार,
बहुत काल वपु धारिकै, प्रणतजनन को पार कियो,
श्री रामानंद रघुनाथ ज्यों, द्वितीय सेतु जगतरण कियो।
(भक्तमाल, छप्पय 36)

स्वामी रामानंद प्रणीत रामसेतु सदृश यह द्वितीय सेतु लोकोत्थान का मार्ग प्रशस्त करता है।

(लेखिका रामकथा की शोधार्थी हैं।)

MV_January 2019 final for printing:Layout 1 1/16/2019 5:44 PM Page 42

बच्चे मन के सच्चे होते हैं। उनमें किसी प्रकार का छल-छद्म या भेदभाव नहीं होता। वे निष्कपट भाव से परिवार के बड़े-बुजुर्गों की बातों और उनके आचरण का अनुकरण करते हैं, क्योंकि उन्हें लगता है कि उनके बड़े जो कुछ कर रहे हैं वही करणीय है। समाज का प्रत्येक व्यक्ति चाहता है कि उसके बच्चे आदर्श व्यवहार करें, ऐसी स्थिति में परिवार के बड़े-बुजुर्गों का यह दायित्व है कि वे बच्चों के सामने वैसा ही आदर्श व्यवहार करें जैसा आदर्श आचरण करने की अपेक्षा उन्हें अपने बच्चों से है। बच्चों के सामने हम अपने आचरण को आदर्श रूप में कैसे प्रस्तुत करें, इसी गंभीर विषय को बहुत ही सरल शब्दों में बता रहे हैं मनोवैज्ञानिक विषयों के सफल लेखक *सीता राम गुप्ता* –

MV_January 2019 final for printing:Layout 1 1/16/2019 5:44 PM Page 43

सीताराम गुप्ता

आदर्श आचरण से बच्चों को सिखाइए

घर में सबसे छोटा सदस्य है मेरा पौत्र। जब वह सवा-डेढ़ साल का था, तो वह मौका लगते ही झाड़ू उठा लाता था और लगता था फर्श पर झाड़ू लगाने की कोशिश करने। कभी वाइपर उठा लाता था और उसे चलाने लगता। कोई भी कपड़ा मिल जाए उसे उठाकर पानी की बाल्टी में या जहाँ कहीं भी पानी मिले उसमें डुबोकर गीला कर लेता था और कभी फर्श पर पौंछा लगाने लगता था, तो कभी मेज साफ करने लगता था। गाड़ी में अगली सीट पर बैठता था तो कभी रेडियो का वॉल्यूम बढ़ा देता था, तो कभी एसी का। कभी वाइपर का लीवर घुमा देता था तो कभी गियर रॉड खींचने का प्रयास करता था। वह ऐसा क्यों करता था? ऐसा वह इसलिए करता था क्योंकि वह हम सबको ऐसा करते हुए देखता था और उसे खुद करने की कोशिश करता था। यह अत्यंत स्वाभाविक है। बच्चा खाली या शांत नहीं बैठ सकता। उसे कुछ न कुछ खेल करना ही है। घर के सदस्यों के काम और दूसरे क्रियाकलापों की नकल करने से अच्छा खेल उसके लिए और कोई हो ही नहीं सकता।

प्रश्न उठता है कि क्या बच्चे के खेलने के लिए उसके पास खिलौने नहीं होते जो वह घर की दूसरी चीजों से खेलने की कोशिश करता है? होते हैं, पर्याप्त होते हैं, लेकिन वास्तविकता यह है कि यदि उसके चारों ओर बहुत सारी चीजें रखी हों तो वह उन सबसे भी खेलेगा। अपने आसपास की सभी चीजें उसे आकर्षित करती हैं। घर के सदस्य जिन चीजों का प्रयोग करते हैं और जैसे करते हैं वह भी उन सभी चीजों का उन्हीं की तरह या अपने तरीके से प्रयोग करना चाहता है। यही उसका खेल है। बच्चा खिलौनों से भी प्रायः तभी

खेलता है जब दूसरे लोग उनसे खेलना शुरू करते हैं। वास्तविकता यह भी है कि लोग अपने बच्चों के लिए जो खिलौने खरीदते हैं वे बच्चों की पसंद के नहीं अपनी पसंद के खरीदते हैं। वे खिलौने लाते हैं और बच्चे को बतलाते हैं कि ऐसे खेलो। लोग प्रायः खाने-पीने की चीजें भी बच्चों की पसंद के बजाय अपनी पसंद की ही लाते हैं। हम बच्चों से अपनी बात मनवाने या अपनी पसंद उस पर थोपने का प्रयास करते ही रहते हैं।

बच्चा जब बड़ों की पसंद के खिलौनों से खेलेगा, उनकी पसंद की चीजें खाएगा, तो यह भी स्वाभाविक ही है कि उनकी पसंद या जरूरत के दूसरे काम भी उनकी तरह ही करने की कोशिश करेगा क्योंकि प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से यही तो हम उसे सिखा रहे होते हैं। और यदि ऐसा करने से उसे रोकेंगे तो मचलने लगेगा। रोएगा। रूठेगा। उसका यह व्यवहार बड़ों से प्रश्न करना ही है कि जब आप सब लोग यह सब कर रहे हो तो मेरे करने में क्या बुराई है? उसका व्यवहार बिलकुल ठीक है। यदि आप अपने सामने नहीं करने देंगे तो वह आँख बचाकर या पीछे से करेगा। तो नन्हे बच्चों को रोकने की बजाय वह जो करें, करने दीजिए। बस उनकी सुरक्षा का ध्यान रखिए। उन्हें सर्दी-गर्मी, आग-पानी व गंदगी से बचाने का प्रयास करते रहिए। जो चीजें उनके लिए खतरनाक या कोई दुर्घटना पैदा करने वाली हो सकती हों, उनकी पहुँच से दूर कर दीजिए। खतरनाक रसायन व दवाएँ उनकी पहुँच से बहुत ऊपर रखिए।

MV_January 2019 final for printing:Layout 1 1/16/2019 5:44 PM Page 45

यदि बच्चा इधर-उधर से कोई गलत चीज उठाकर मुँह में डालता है तो उसे रोकना जरूरी है। इसके लिए उसका पेट भरा होना भी जरूरी है। उसे सही समय पर उचित आहार दीजिए लेकिन खाने-पीने के मामले में भी बच्चे कम परेशान नहीं करते। अधिकांश बच्चे प्रायः दूध पीने या खाने से बचने की कोशिश करते हैं और जब घर के दूसरे या बड़े सदस्य भोजन करते हैं तो उनके भोजन में से उठाकर खाने का प्रयास करते हैं। यह तो बड़ी अच्छी बात है। इस बात का लाभ उठाना चाहिए। जब घर के बड़े सदस्य कुछ भी खाने के लिए बैठें तो ऐसा भोजन लेकर बैठें जो बच्चों के लिए भी अनुकूल हो। खुद भी खाएँ और बच्चों को भी खिलाएँ। जिन घरों में तीसरी या चैथी पीढ़ी के बुजुर्ग जैसे दादा-दादी, नाना-नानी या परदादा-परदादी आदि होते हैं बच्चों के लिए हर तरह से बड़ा ठीक रहता है। बुजुर्ग प्रायः दलिया-खिचड़ी आदि लेते हैं तो बच्चा भी उनके साथ ये सब खाद्य पदार्थ ले लेता है जो उसके लिए ठीक रहते हैं।

इसके बाद सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न है शिष्टाचार व नैतिकता के विकास का। अनुकरण अथवा नकल का हम सबके जीवन में बहुत महत्त्व है। नकल के बिना हम सीख ही नहीं सकते, लेकिन गलत चीजों की नकल करना घातक है। बच्चा भी अनुकरण से ही सीखता है। वह बड़ों का ही अनुकरण करता है। अपने अंदाज में वह बड़ों की ही भाषा बोलता है और बड़ों की तरह ही बोलता है। हम शिष्टाचार का यथेष्ट पालन न करें और बच्चों को समझाएँ कि वो शिष्टाचार का पालन करें तो यह संभव नहीं। बच्चों को शिष्ट बनाना है तो माता-

बच्चों के लिए उपयुक्त भोजन

पिता को शिष्ट बनना होगा। हम घर में एक दूसरे से व मेहमानों या अन्य आगंतुकों से जैसा व्यवहार करते हैं अथवा जैसी भाषा बोलते हैं बच्चा भी उसी का अनुकरण करेगा। अभिवादन भी उन्हीं की तरह करेगा। लहजा उसका अपना होता है लेकिन भाव बड़ों का ही आ जाता है। माता-पिता व घर के अन्य सदस्यों में जैसी आदतें होती हैं, बच्चा बड़ी सूक्ष्मता से न केवल उनका निरीक्षण करता रहता है; अपितु उनकी नकल भी करता रहता है।

यदि बच्चों में सचमुच अच्छी आदतें डालनी हैं और उन्हें सुसंस्कृत बनाना है, तो माता-पिता को भी स्वयं भी अच्छी आदतें सीखनी होंगी और सुसंस्कृत बनना होगा। बच्चा जब हमारे व्यवहार अथवा व्यक्तित्व में कमी अथवा दोगलापन पाता है तो वह विचलित हो जाता है। हमारी कथनी व करनी का अंतर या किसी के सामने व उसकी पीठ पीछे उसके प्रति व्यवहार या आचरण में अंतर बच्चे पर सबसे ज्यादा बुरा प्रभाव डालता है। वह समझ ही नहीं पाता कि कथनी ठीक थी या करनी ठीक है। उसे पता नहीं चल पाता कि किसी के सामने उसके बारे में कही गई बात ठीक थी या उसके जाने के बाद पहली बात के विपरीत कही गई बात उचित है। उसकी प्रशंसा या चापलूसी ठीक थी या उसकी आलोचना ठीक है। बच्चे के संपूर्ण आचरण व उसके नैतिक चरित्र के विकास में इन बातों का बड़ा प्रभाव पड़ता है। हम बात-बात पर गुस्सा करते हैं या झूठ बोलते हैं तो बच्चा भी ऐसा ही करेगा। हमारे व्यवहार अथवा आचरण में दोगलापन है तो बच्चे के व्यवहार व आचरण में भी वह जल्दी ही आ जाएगा।

प्रायः ऐसा होता है कि माता-पिता या घर के अन्य सदस्यों में कुछ कमियाँ होती हैं। यह स्वाभाविक है लेकिन कोई माता-पिता या घर का अन्य सदस्य ये नहीं चाहता कि उनके बच्चों में भी ये कमियाँ आएँ। वो बच्चों को उन कमियों से बचाने के लिए पूरा जोर लगा देते हैं। यहाँ स्वयं को ठीक करने की बजाय बच्चों को ठीक करने पर जोर होता है। इसके लिए समझाने से लेकर डाँटने-डपटने व मारने-पीटने तक सभी तरीके आजमाए जाते हैं लेकिन बच्चों पर इसका सकारात्मक नहीं, नकारात्मक प्रभाव ही पड़ता है। बच्चों को जिन बातों के लिए जोर देकर रोकने का प्रयास किया जाता है, बच्चे उन्हीं के बारे में सोचते रहते हैं और जो हमारी सोच होती है वही अंततोगत्वा हमारे जीवन की वास्तविकता में परिवर्तित हो जाती है। बच्चे भी इस प्रभाव से अछूते नहीं रहते।

गुण हों या अवगुण ऊपर से नीचे की ओर संक्रमित होते हैं। आपने सुना ही होगा कि जैसा बाप वैसा बेटा। जैसा राजा वैसी प्रजा। जहाँ राजा अथवा जनप्रतिनिधि अपने कर्तव्य का ठीक से पालन नहीं करता, वहाँ प्रजा का भी अपने कर्तव्य पालन में शिथिल हो जाना अस्वाभाविक नहीं। राजनीति का स्तर गिरने का ही यह परिणाम है कि जनता में नैतिकता का निरंतर ह्रास हो रहा है और भ्रष्टाचार लगातार बढ़ता ही जा रहा है। कोई तो हो जो ऊपर से वास्तव में एक अच्छी शुरुआत करे। नेताओं की करनी और कथनी के अंतर ने सुधार की संभावनाओं को निर्मूल कर डाला है। मात्र चीख-चीखकर लच्छेदार भाषण देने से नैतिकता का विकास असंभव है। प्रवचन अथवा नैतिक शिक्षा की किताबें छलावे अथवा व्यापार के अतिरिक्त कुछ नहीं। बच्चे ही नहीं हम सब भी अपने परिवेश से ही ज्यादा सीखते हैं अतः परिवेश को सुधारना अनिवार्य है और परिवेश हमारे सामूहिक आचरण से निर्मित होता है।

एक अत्यंत प्रचलित कथा है जो आपने पहले भी अवश्य ही सुनी होगी। एक महिला का बच्चा गुड़ बहुत खाता था जिससे उसका पेट खराब रहता था। वह अपने बच्चे को साथ लेकर एक महात्मा के पास गई

MV_January 2019 final for printing:Layout 1 1/16/2019 5:44 PM Page 47

और महात्मा से कहा–''महात्मा जी मेरा बेटा बहुत गुड़ खाता है जिससे इसका पेट खराब रहता है। मैंने इसे समझाने की बहुत कोशिश की पर ये मानता ही नहीं। आप इसे समझाएँगे तो ये जरूर मान जाएगा और ठीक हो जाएगा।'' महात्मा ने महिला को दस दिन बाद आने को कहा। दस दिन बाद महिला फिर अपने बच्चे को साथ लेकर महात्मा के पास पहुँची, तो उन्होंने बड़े प्यार से बच्चे को समझाया कि ज्यादा गुड़ खाना सेहत के लिए अच्छा नहीं। पेट ठीक रखना है और स्वस्थ रहना है तो ज्यादा गुड़ खाना छोड़ दो। इस पर महिला ने साधु से पूछा कि महात्मा जी इतनी सी बात क्या आप उस दिन नहीं समझा सकते थे?

महात्मा ने कहा कि समझा तो सकता था पर उस दिन मेरी बात का असर बच्चे पर नहीं होता क्योंकि तब तक मैं खुद ज्यादा गुड़ खाता था। मेरे आचरण के दोगलेपन के कारण बच्चे पर मेरे उपदेश का कोई सकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ता। क्योंकि अब मैंने स्वयं गुड़ खाना छोड़ दिया है इसीलिए बच्चे को भी अच्छी तरह से समझा पा रहा हूँ कि ज्यादा गुड़ खाना सेहत के लिए अच्छा नहीं। जब तक हम अपने आचरण को नहीं बदलेंगे कोरे उपदेश से समाज को बदलना संभव नहीं। यदि हम वास्तव में चाहते हैं कि हमारे बच्चों में अच्छी आदतों व सही नैतिक मूल्यों का विकास हो तो उन सभी आदतों व नैतिक मूल्यों को स्वयं माता-पिता को भी अपने अंदर विकसित करना होगा। दूसरा कोई उपाय या विकल्प हो ही नहीं सकता।

(लेखक मनोवैज्ञानिक विषयों के समर्थ लेखक हैं।)

MV_January 2019 final for printing:Layout 1 1/16/2019 5:44 PM Page 48

कोषः पूर्वाः सर्वारम्भाः। तस्मात् पूर्वं कोषमवेक्षेत। *-कौटिल्यीय अर्थशास्त्रम् 2.8.1*

सारे कार्य कोष पर निर्भर हैं। इसलिए शासक को चाहिए कि सबसे पहले कोष पर ध्यान दे। आचार्य चाणक्य ने राज्य संचालन के लिए धन के महत्त्व का उल्लेख करते हुए स्पष्ट कहा है कि राष्ट्र की संपत्ति को बढ़ाना व राष्ट्र के चरित्र का ध्यान रखना शासक का दायित्व है। कोष वृद्धि के लिए जहाँ उन्होंने कोष के संरक्षण की आवश्यकता पर बल दिया है वहीं 22वें अध्याय में कोष की वृद्धि के लिए 'कर' की व्यवस्था का भी उल्लेख किया है। जिस 'कर' व्यवस्था का उल्लेख आचार्य चाणक्य व अन्यान्य स्मृतिकरों ने किया है उस व्यवस्था में काल और परिस्थिति के अनुसार समय-समय पर संशोधन होते रहे हैं। भारत में वर्तमान 'कर' प्रणाली अँग्रेजी शासन की देन है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही इस 'कर' प्रणाली में परिवर्तन करने के प्रयास होते रहे हैं। इस संबंध में समय-समय पर विशेषज्ञ समितियों का गठन किया गया जिनकी अनुशंसाओं के आधार पर 1 जुलाई, 2017 से पूरे देश में वस्तु एवं सेवा कर (जीएसटी) प्रणाली लागू की गई। प्रस्तुत लेख में वर्तमान कर प्रणाली में सुधारों के सिलसिलेवार प्रयासों का उल्लेख कर रहे हैं अर्थशास्त्री *डॉ. विनय कुमार श्रीवास्तव*-

MV_January 2019 final for printing:Layout 1 1/16/2019 5:44 PM Page 49

डॉ. विनय कुमार श्रीवास्तव

कैसे अस्तित्व में आई वस्तु व सेवा कर प्रणाली

आज विश्व के 164 देशों में मूल्य वर्धित कर (वैट)या वस्तु एवं सेवा कर (जीएसटी) प्रणाली किसी न किसी रूप में लागू हैं। इनमें 46 देश अफ्रीका, एक देश उत्तरी अमेरिका, 18 देश केंद्रीय अमेरिका और कैरेबिया , 12 देश दक्षिण अमेरिका, 28 देश एशिया, 51 यूरोप और 8 देश ओशेनिया के हैं। भारत ने भी 2017 में वस्तु एवं सेवा कर अधिनियम, 2017 पारित किया। आज यह संपूर्ण भारत में लागू है। यह एक अप्रयत्यक्ष कर है। इस अधिनियम ने लगभग 17 तरीके के अप्रत्यक्ष करों एवं 23 प्रकार के उपकरों को अपने में समाहित कर लिया है! यह अधिनयम, मानव उपभोग के लिए शराब व पेट्रोलियम पदार्थों को छोड़कर, वस्तु एवं सेवा की सभी आपूर्ति पर लगता है। इस अधिनियम ने भारत की लगभग 2 खरब रुपये की अर्थव्यवस्था एवं 1.3 अरब लोग को संयुक्त कर एक एकीकृत साझा बाजार बना दिया है। इसे सूचना प्रौद्योगिकी की सहायता से इस तरह बनाया गया है जो भारत में निरीक्षक राज को खतम कर देगा।

भारत में लंबे समय से कर प्रणाली में सुधार की आवश्यकता पर बल दिया जाता रहा है। इस संदर्भ में कर विशेषज्ञों के नेतृत्व में कई समितियों का गठन किया गया। इन समितियों से कर में सुधार के लिए कार्य-प्रणाली पर सुझाव माँगे गए। सर्वप्रथम 1953 में जॉन मथाई के नेतृत्व में एक समिति का गठन किया गया था। इसके बाद एल. के. झा, राजा चैलेय, अमरेश बागची, गोविंदा राव और विजय केलकर जैसे विशेषज्ञों ने कर प्रणाली में सुधार हेतु अपना योगदान दिया। सरकर द्वारा गठित सभी समितियों ने विस्तृत अध्ययन के बाद कर प्रणाली में सुधार हेतु अपने सुझाव दिए। सबसे महत्त्वपूर्ण समिति रिजर्व बैंक के पूर्व गवर्नर

श्री एल. के. झा के नेतृत्व में गठित 'अप्रत्यक्ष कर जाँच समिति' रही। इस समिति ने भारत में मूल्य वर्धित कर प्रणाली को अपनाने पर बल दिया।

एल. के. झा समिति के सुझावों को सर्वप्रथम राजीव गांधी सरकार में वित्तमंत्री विश्वनाथ प्रताप सिंह ने अपने दो वर्षो के संक्षिप्त कार्यकाल में लागू करने की पहल की, उन्होंने झा समिति के सुझावों के आधार पर 1986-87 के अपने केंद्रीय बजट में सर्वप्रथम संशोधित मूल्य वर्धित कर (MODVAT) को लागू किया। मोडवैट झा समिति के द्वारा दी गयी सिफारिशों का आंशिक रूप था। इसमें काफी कमियाँ थीं, जो समय-समय पर सरकारों द्वारा दूर की जाती रही।

आरंभिक चरणों में इसके अंतर्गत कर की बहुत अधिक दरें थी, जिसे समय-समय पर कम किया जाता रहा। 1999-2000 के बजट में तत्कालीन वित्तमंत्री यशवंत सिन्हा ने इसे नियमित करने की कोशिश की। उस समय मोडवैट की दस दरें (0, 5, 10, 15, 20, 25, 30, 35, 40 और 50 प्रतिशत) थी। यशवंत सिन्हा ने अपने बजट में मोडवैट की इन दस दरों को तीन दरों (8प्रतिशत 16प्रतिशत और 24प्रतिशत) में परिवर्तित कर दिया। उन्होंने 16प्रतिशत की एक केंद्रीय दर (सेंट्रल रेट) 8 प्रतिशत की एक योग्यता दर (मैरिट रेट) एवं 24 प्रतिशत की एक अवगुण दर (डीमैरिट रेट) बनाई और भविष्य में इन तीन दरों को एक दर में परिवर्तित कर देने का प्रस्ताव रखा।

1999-2000 के बजट में दिए गए अपने प्रस्ताव के आधार पर यशवंत सिन्हा ने वर्ष 2000-2001 के बजट में मोडवैट को सेनवैट में बदल दिया और मोडवैट की तीन दरों को सेनवैट की एक दर 16 प्रतिशत में कर दिया। इसके बाद केंद्र सरकार ने देश के सभी राज्यों में भी स्टेट-वैट को लागू करने का प्रयास शुरू किया। वैट की शुरुआत सर्वप्रथम तत्कालीन वित्तमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने की थी, उन्होंने कहा था की उत्पाद शुल्क को सरलीकृत कर वैट को लागू करना चाहिए, जिससे की दोहरे कर की समस्या को खतम किया जा सके।

सर्वप्रथम1995 में मुख्यमंत्रियों की एक बैठक में स्टेट वैट पर चर्चा की गई। जिसकी अध्यक्षता

MV_January 2019 final for printing:Layout 1 1/16/2019 5:44 PM Page 51

1995 में राज्यों के मुख्यमंत्रियों की बैठक में तत्कालीन वित्तमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने पहली बार राज्यों में मूल्य वर्धित कर (वैट) प्रणाली अपनाने पर चर्चा की। 16 नवंबर, 1999 को तत्कालीन वित्तमंत्री यशवंत सिन्हा ने मुख्यमंत्रियों की बैठक में स्टेट वैट प्रणाली लागू करने के लिए 1 जनवरी, 2000 की समय सीमा निर्धारित की। इसके बाद यह समय सीमा बढ़ाकर 1 अप्रैल, 2003 निर्धारित की गई। हरियाणा देश का पहला राज्य था जिसमें स्टेट वैट 1 अप्रैल, 2003 से लागू कर दिया और उत्तर प्रदेश वैट लागू करने वाला अंतिम राज्य था उसने 1 जनवरी, 2008 से राज्य में वैट प्रणाली लागू की।

तत्कालीन वित्तमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने की। 16 नवंबर 1999 को मुख्यमंत्रियों की एक बैठक में तत्कालीन वित्तमंत्री यशवंत सिन्हा ने स्टेट वैट को लागू करने के लिए 1 जनवरी, 2000 की समय सीमा का निर्धारण किया। उन्होंने मुख्यमंत्रियों की एक समिति का गठन किया, इस समिति की अध्यक्षता के लिए पश्चिम बंगाल के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री ज्योति बसु का नाम प्रस्तावित किया, जिसे श्री ज्योति बसु ने स्वीकार भी कर लिया था। मुख्यमंत्रियों की व्यस्तता की वजह से समिति को काम करने में कठिनाई आने लगे जिसकी वजह से यशवंत सिन्हा ने राज्य के वित्तमंत्रियों की एक समिति का गठन किया। बाद में इस समिति को सशक्त किया गया और इसका नाम 'एम्पॉवर्ड कमेटी ऑफ स्टेट फाइनेंस मिनिस्टर' रखा गया। इस समिति के प्रथम अध्यक्ष प्रसिद्ध अर्थशास्त्री व प. बंगाल के वित्तमंत्री डॉ. असीम दास गुप्त थे।

इस समिति ने स्टेट वैट को लागू करने के लिए अनेक कदम उठाए। तत्कालीन प्रधानमंत्री अटल विहारी वाजपेयी की अध्यक्षता में अयोजित सभी राज्यों के मुख्यमंत्रियों के एक सम्मेलन में तत्कालीन वित्तमंत्री जसवंत सिंह ने स्टेट वैट को लागू करने के लिए समय सीमा बढ़ाकर 1 अप्रैल, 2003 निर्धारित की। इसके बाद तत्कलीन वित्तमंत्री पी. चिदंबरम ने स्टेट वैट को लागू करने की समय सीमा आगे बढ़ा कर 1 अप्रैल, 2005 निर्धारित की। व्यापारियों के विरोध के बावजूद 20 राज्यों एवं केंद्र शासित प्रदेशों ने स्टेट वैट अप्रैल,2005 से लागू कर दिया।

हरियाणा देश का पहला राज्य था जिसने स्टेट वैट 1 अप्रैल, 2003 से लागू किया और उत्तर प्रदेश, आखिरी राज्य जिसने स्टेट वैट 1 जनवरी, 2008 से लागू किया।

स्टेट वैट के लागू होने के बाद 'एम्पॉवर्ड कमेटी ऑफ स्टेट फाइनेंस मिनिस्टर' का कार्य समाप्त हो गया, लेकिन इसकी उपयोगिता को देखते हुए तत्कालीन वित्तमंत्री पी. चिदंबरम ने इस समिति से आग्रह किया कि समिति वस्तु एवं सेवा कर प्रणाली (जीएसटी) अपनाने पर कार्य पर कार्य करे। चिदंबरम के आग्रह को समिति ने स्वीकार कर लिया और वस्तु एवं सेवा कर प्रणाली को लागू करने के लिए कार्य आरंभ कर दिया। इस संदर्भ में समिति ने वित्त मंत्रालय के सहयोग से चार संविधान संशोधन बिल तैयार किए।

तत्कालीन वित्तमंत्री प्रणब मुखर्जी ने संविधान (115वाँ संशोधन) बिल-2011 लोकसभा में प्रस्तुत किया। लेकिन भाजपा के नेतृत्व में विपक्ष ने इसका विरोध किया। मुख्य विरोध भाजपा शासित दो राज्यों -- मध्य प्रदेश एवं गुजरात ने किया। परिणामस्वरूप लोकसभा अध्यक्ष ने बिल को वित्त मंत्रालय से सम्बद्ध संसद की स्थायी समिति के मूल्यांकन के लिए संदर्भित किया। उस समय यशवंत सिन्हा इस समिति के अध्यक्ष थे।

MV_January 2019 final for printing:Layout 1 1/16/2019 5:44 PM Page 52

वस्तु एवं सेवा कर के संबंध में विपक्ष का मानना है कि इसका क्रियान्वयन जल्दीबाजी में, गलत तरीके से हुआ है। सरकार ने अब तक 294 अधिसूचनाएं जारी की हैं। वस्तु एवं सेवा कर को संचालित करने वाली संस्था जीएसटी कांसिल ने अपनी 30 बैठकों मे जीएसटी सुधार के संबंध में 918 निर्णय लिए है। कांसिल ने समय-समय पर टैक्स ब्रैकेट को परिवर्तित किया जिससे लॉबिंग को बढ़ावा मिला और कई उच्च न्यायालयों में मुकदमे दायर किये गए। जो इस बात का द्योतक है कि जीएसटी को जल्दीबाजी में क्रियान्वित किया गया।

इस समिति ने गहन अध्ययन के बाद अपनी रिपोर्ट लोकसभा को दे दी, लेकिन 15वीं लोकसभा का कार्यकाल समाप्त होने के परिणामस्वरूप संविधान (115वाँ) संशोधन बिल-2011 समाप्त हो गया। 2014 में 16वीं लोकसभा के चुनाव भाजपा के नेतृत्व वाली राजग को भारी सफलता मिली और नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में सरकार का गठन हुआ।

सरकार के गठन के बाद वित्तमंत्री अरुण जेटली ने वस्तु एवं सेवा कर पर फिर से कार्य करना प्रारंभ किया और इस संदर्भ में संविधान (122वाँ) संशोधन बिल-2014 लोकसभा में प्रस्तुत किया गया। कुछ संशोधनों के पश्चात् लोकसभा ने इसे पारित कर दिया। फिर इसे राज्यसभा में प्रस्तुत किया गया, लेकिन कांग्रेस के नेतृत्व वाले विपक्षी दलों के विरोध के कारण बिल को राज्यसभा की प्रवर समिति को संदर्भित कर दिया गया।

राज्य सभा की प्रवर समिति ने कुछ सुझाव के साथ अपनी रिपोर्ट राज्यसभा को सौंप दी। इसके उपरांत वित्त मंत्री अरुण जेटली ने आवश्यक संशोधन कर बिल को पुनः राज्यसभा में रखा जो कुछ संशोधनों के साथ पारित हो गया। इसके बाद बिल को लोकसभा में प्रस्तुत किया गया। लोकसभा से बिल पारित होने के पश्चात् इसे राज्यों की संबंधित विधान सभा से पारित करने के लिए भेजा गया। 50 प्रतिशत से ज्यादा राज्यों द्वारा बिल का अनुमोदन होने के पश्चात् बिल को राष्ट्रपति डॉ. प्रणब मुखर्जी ने अनुमोदित किया।

30 जून, 2017 के मध्य रात्रि में संसद के केंद्रीय कक्ष में आयोजित संसद के संयुक्त अधिवेशन में राष्ट्रपति ने वस्तु एवं सेवा कर अधिनियम को देश में लागू करने की घोषणा की। सरकार का यह मानना है कि नया वस्तु एवं सेवा कर भारतीय कर व्यवस्था के लिए गेम चेंजर सिद्ध होगा। लेकिन विपक्ष कुछ बातों को लेकर इसका विरोध कर रहा है। विपक्ष का मानना है कि वस्तु एवं सेवा कर एक अच्छी व्यवस्था होने के बावजूद सरकार की कुछ गलतियों के कारण इससे देश को नुकसान होगा।

विपक्ष का मानना है कि वस्तु एवं सेवा कर का क्रियान्वयन जल्दीबाजी में, गलत तरीके से हुआ है। सरकार ने अब तक 294 अधिसूचनाएँ जारी की हैं। वस्तु एवं सेवा कर को संचालित करने वाली संस्था जीएसटी कौंसिल ने अपनी 30 बैठकों मे जीएसटी सुधार के संबंध में 918 निर्णय लिए हैं। कौंसिल ने समय-समय पर टैक्स ब्रैकेट को परिवर्तित किया जिससे लॉबिंग को बढ़ावा मिला और कई उच्च न्यायालयों में मुकदमे दायर किए गए, जो इस बात का द्योतक है कि जीएसटी को जल्दीबाजी में क्रियान्वित किया गया। इसके क्रियान्वयन के प्रथम वर्ष तक व्यापारियों को, खास तौर पर छोटे और मझौले व्यापारियों को बहुत नुकसान हुआ।

व्यापारियों ने रिटर्न से संबंधित समस्याओं का

MV_January 2019 final for printing:Layout 1 1/16/2019 5:44 PM Page 53

राष्ट्रपति डॉ. प्रणव मुखर्जी ने 30 जून, 2017 की मध्यरात्रि में संसद के केंद्रीय कक्ष में आयोजित संसद के संयुक्त अधिवेशन में देश में वस्तु एवं सेवा कर अधिनियम (जीएसटी) को लागू करने की घोषणा की।

सामना किया। इनपुट टैक्स क्रेडिट की समस्या उनके सम्मुख खड़ी रही। निर्यातकों को अग्रिम कर का भुगतान करने के पश्चात् उनके माँगे जानेवाले रिटर्न का भुगतान न होने के कारण उनके सम्मुख कार्यशील पूँजी की समस्या उत्पन्न हो गई। इसका असर गुजरात में हुए विधान सभा चुनाव में देखने को मिला, जहाँ पर व्यापारीजन भाजपा के विरोध में प्रचार कर रहे थे।

हलाँकि सरकार ने जीएसटी को सफल बनाने के लिए बहुत सारे काम किए। इस क्रम में निर्यातकों को राहत देने के लिए ई.वॉलेट स्कीम लागू की गयी। छोटे और मझौले व्यापारियों को रहत देने के लिए रिटर्न की संख्या हर महीने एक के जगह तीन महीने पर एक कर दी गयी। ट्रांसपोर्टरों के आवागमन को सुचारु रूप से चलने के लिए इ.वे बिल योजना लागू की गयी। इसका निर्यातकों पर सार्थक प्रभाव पड़ा।

अब हम कह सकते हैं की सरकार के द्वारा किए गए प्रयास सार्थक हो रहे है। जीएसटी राजस्व में महीने-दर-महीने हो रही वृद्धि इसका घोतक है। इसके द्वारा उत्पन्न हुई कठिनाइयों में निरंतर कमी आयी है। आशा है कि वास्तव में वाकई भारतीय अर्थयवस्था के लिए एक गेम चेंजर साबित होगी और देश सफलता की ओर अग्रसर होगा।

(लेखक रैफल्स विश्वविद्यालय, नीमराणा, राजस्थान में डीन व एसोसिएट प्रोफेसर हैं।)

MV_January 2019 final for printing:Layout 1 1/16/2019 5:44 PM Page 54

मौसम में बदलाव प्रकृति का नियम है। बदलते मैसम में संक्रमणकारी विषाणु और रोगाणु पनपते हैं। यदि हमारे शरीर की रोग-प्रतिरोधक क्षमता सही है तो शरीर इस संक्रमण का सफलतापूर्वक मुकाबला कर सकता है और यदि प्रतिरोधक क्षमता संक्रमण से नहीं लड़ पाती तभी व्यक्ति रोगी हो जाता है। प्रस्तुत लेख में आयुर्वेदाचार्य डॉ. सुनील आर्य बता रहे हैं कि हम अपनी रोग-प्रतिरोधक क्षमता को कैसे सुदृढ़ करें और यदि किसी प्रकार के संक्रमण के कारण रोग हो जाए तो क्या सावधानी बरतें और उसका उपचार कैसे करें–

MV_January 2019 final for printing:Layout 1 1/16/2019 5:44 PM Page 55

डॉ. सुनील आर्य

डेंगू बुखार से डरें नहीं : ठीक से करें उपचार

बदलते मौसम में बुखार होना आम बात है। घरेलु या स्वयं चिकित्सा के 2-3 दिन बाद भी लक्षणों में आराम ना होने पर हम डॉक्टर का रुख करते हैं और डॉक्टर जाँच पड़ताल का। आमतौर पर होने वाली रक्त की जाँच में डेंगू, मलेरिया या टाइफाइड के एंटीजन की पुष्टि की जाती है और पुष्टि होने पर तो उस रोग के अनुसार उपचार होगा ही, पर पुष्टि ना होने पर भी वायरल बुखार कहकर निदान किया जाता है। अब इनमे से डेंगू भी वायरस के संक्रमण से ही होता है तो अन्य वायरल बुखारों की तरह इसे भी लेना चाहिए। परंतु इसमें रक्तस्राव होने की संभावना के चलते समाज में भय ज्यादा है। आइये, डेंगू से जुड़े कुछ तथ्यों पर गौर करते हैं। डेंगू वायरस से संक्रामित मच्छर द्वारा काटे जाने पर ही डेंगू बुखार की संभावना होती है। संभावना इसलिए क्योंकि हमारी रोग-प्रतिरोधक क्षमता (Immunity) यदि संक्रमण से नहीं लड़ पाती तभी रोग होता है, इसलिए मच्छर तो बहुत लोगों को काटता है पर सभी को संक्रमण नहीं होता। इसका अर्थ यह हुआ कि मच्छरों की रोकथाम के साथ-साथ बेहद महत्त्वपूर्ण है अपनी रोग प्रतिरोधक क्षमता के संवर्धन का उपाय करना।

एंटी वायरल दवाइयाँ

गंभीर संक्रमण के लिए एकाध विशिष्ट दवाओं को छोड़कर आमतौर पर वायरल संक्रमण के खिलाफ कोई कारगर दवा नहीं है। प्राकृतिक रूप से सामान्य वायरल बुखार सप्ताह-दस दिन में अपने आप ही ठीक हो जाता है इसलिए केवल लक्षणों जैसे उलटी, बुखार, जी-मचलाना , जुकाम-खाँसी आदि के लिए ही हलका-फुलका उपचार किया जाना चाहिए। एंटी बायोटिक दवाइयाँ केवल बैक्टीरियल संक्रमण में ही उपयोगी होती हैं वायरल संक्रमण में नहीं, इसलिए ऐसी विशिष्ट दवाओं का प्रयोग जाने-अनजाने ना केवल हमें नुकसान पहुँचाता है बल्कि डेंगू

MV_January 2019 final for printing:Layout 1 1/16/2019 5:44 PM Page 56

के उपद्रवों को भी बढ़ा देता है। पेरासिटामोल के अलावा अन्य दर्दनाशक व बुखार उतारने की तेज दवाइयाँ प्लेटलेट्स को ज्यादा मात्रा में तोड़ कर रक्त स्राव का खतरा बढ़ा देती हैं।

प्लेटलेट्स — प्लेटलेट्स को लेकर समाज में अनावश्यक रूप से एक भय का माहौल बन गया है (या बनाया गया है)। रक्त में आवश्यक रूप से रहने वाले प्लेटलेट्स डेढ़ लाख से साढ़े चार लाख के बीच रहते हैं। किसी भी रोग में अथवा वायरल बुखार में इनकी संख्या घटती-बढ़ती रहती है। डेंगू बुखार हो जाने के 4-5 दिन के बाद प्लेटलेट्स के कण टूटने लगते हैं जो कि कुछ दिनों में ही अपने आप सामान्य होने लगते हैं पर भय का माहौल इतना ज्यादा है पहले दूसरे दिन भी रक्त की सामान्य जाँच होने पर भी रोगी या उसके परिजनों का ध्यान केवल प्लेटलेट्स की संख्या पर रहता है और 1.5 लाख से कम होने पर भय और चिंता दोनों शुरू हो जाते हैं, जबकि 20 से 25 हजार तक प्लेटलेट्स आ जाने पर बाहर से रक्त या प्लेटलेट्स चढ़ाने की आवश्यकता होती है, लेकिन एक लाख से कम होते ही रोगी के परिजनों का जोर रोगी को अस्पताल में भरती कराने का रहता है और हालात यहाँ तक हो जाते हैं की निजी या सरकारी किसी भी अस्पताल में बिस्तर तक खाली नहीं मिलता। इतने भय के प्रचार की सचमुच जरुरत नहीं है।

पिछले 8-10 वर्षों में गिलोय और पपीते के पत्तों का प्रयोग डेंगू और प्लेटलेट्स संख्या बढाने के लिए काफी प्रचलित हुआ है, यह लाभकारी भी है। कड़ुवा होने के बावजूद इन दिनों इनका प्रयोग खूब हो रहा है हालाँकि ताजा लेना ही ज्यादा लाभकारी है।

क्या करना चाहिए — किसी भी रोग से मुकाबला करने के लिए पर्याप्त जानकारी पहली आवश्यकता है। डेंगू होने पर भयग्रस्त न हों इसे भी अन्य वायरल बुखार की तरह समझें जो कि7-8 दिनों में स्वतः ही ठीक हो जाता है। हलके-फुलके लाक्षणिक उपचार के साथ-साथ पर्याप्त विश्राम, भोजन में दलिया, खिचड़ी, नारियल पानी, घर का बना बिना मिर्च-मसालों का सब्जियों का सूप, मूंग दाल, मसूर दाल, चपाती, पुराना चावल, घीया तोरई टिंडे आदि सब्जियाँ व तरल पदार्थों का अधिक सेवन और लघु सुपाच्य आहार का सेवन करना चाहिए।

किसी खास फल और कोई दूध विशेष डेंगू में बहुत लाभकारी है ऐसी अफवाहें आमतौर पर आती-जाती रहती हैं जो प्रामाणिक नहीं होती। तुलसी, गिलोय, लौंग, अदरक, अमलतास, त्रिफला, कुटकी, चिरायता आदि आयुर्वेदिक औषधियाँ डेंगू बुखार में उपयोगी रहती हैं जिन्हें किसी वैद्य के परामर्श से लिया जाना चाहिए चिकित्सक के परामर्श से ओपीडी स्तर पर ही उपचार पर जोर दें, भयग्रस्त होकर अथवा मेडिकल पास पॉलिसी की वजह से अस्पताल में भरती होने के लिए अनावश्यक जिद न करें। प्लेटलेट्स की संख्या 20-25 हजार से नीचे जाने पर और रक्तस्राव होने या संभावना होने पर सघन निगरानी की जरूरत होती है उसके लिए चिकित्सक का निर्णय ही उपयुक्त होता है। आँकड़े गवाह हैं कि डेंगू से और प्लेटलेट्स घटने से आमतौर पर मृत्यु नहीं होती है।

गिलोय और पपीते के पत्ते— पिछले 8-10 वर्षों में गिलोय और पपीते के पत्तों का प्रयोग डेंगू और प्लेटलेट्स संख्या बढाने के लिए काफी प्रचलित हुआ है, यह लाभकारी भी है। अनेक दवा निर्माता कंपनियाँ इनका रस बोतल में बंद करके खूब बेच रही हैं। कड़ुवा होने के बावजूद इन दिनों इनका प्रयोग खूब हो रहा है हालाँकि ताजा लेना ही ज्यादा लाभकारी है। प्लेटलेट्स के बारे में यहाँ यह भी जानना चाहिए कि इनकी संख्या

MV_January 2019 final for printing:Layout 1 1/16/2019 5:44 PM Page 57

गिलोय का पेय

पाँच लाख से ऊपर जाना भी सुरक्षित नहीं होता बल्कि रक्त केंसर की स्थिति बनने का डर होता है। लेकिन गिलोय का प्रयोग दोनों ही स्थितियों में बहुत लाभकारी है। गिलोय प्लेटलेट्स की संख्या को अस्थिमज्जा (BONE MARROW) पर सकारात्मक प्रभाव डालकर संतुलित करती है। इसके अलावा गिलोय रोगप्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाने में विशेष उपयोगी है। इसका प्रयोग ऋतुसंधिकाल (एक मौसम से दूसरे मौसम के बीच के 15 दिन) में अथवा बरसात शुरू होने से पहले से लेकर बरसात समाप्त होने तक के तीन महीने रोजाना सेवन किया जाए तो शरीर को हमेशा रोगों से बचा रहने के साथ-साथ यह भी संभव है कि संक्रमित मच्छर के काटने के बावजूद डेंगू मलेरिया ना हो। यह ही रोगरोधी ताकत (Immunity) बढ़ने का लक्षण है।

गिलोय सेवन विधि — एक फुट लंबी एक अंगुल मोटी और एक वर्ष पुरानी घीया जैसे हरे रंग की ताजी डंडी को अच्छी तरह कूट मसल कर लुगदी बनाएँ और 200 मिली उबलते पानी में डाल कर 3-4 घंटे छोड़ दें। बाद में मसल- छानकर 50-50 मिली लीटर दिन में कई बार लें। इसी में पपीते के दो पत्ते, तुलसी के 20-25 पत्ते, काली मिर्च, शहद आदि भी मिलाया जा सकता है। पेय शीघ्र बनाना हो तो तुरंत उबाल कर भी बनाया जा सकता है। कभी-कभी वायरल बुखार में होने वाला जोड़ों का दर्द और सूजन2-3 महीने बाद भी ठीक नहीं होता जिसे चिकनगुनिया या चिकनगुनिया जैसा कहा जाता है। ऐसे लगभग 40 प्रतिशत रोगी आमवात, गठिया बाय या रूमेटिक आर्थराइटिस में परिवर्तित हो जाते हैं इसके उपचार में भी आयुर्वेदिक चिकित्सा काफी कारगर रहती है।

(लेखक आयुर्वेदिक चिकित्सक हैं।)

MV_January 2019 final for printing:Layout 1 1/16/2019 5:44 PM Page 58

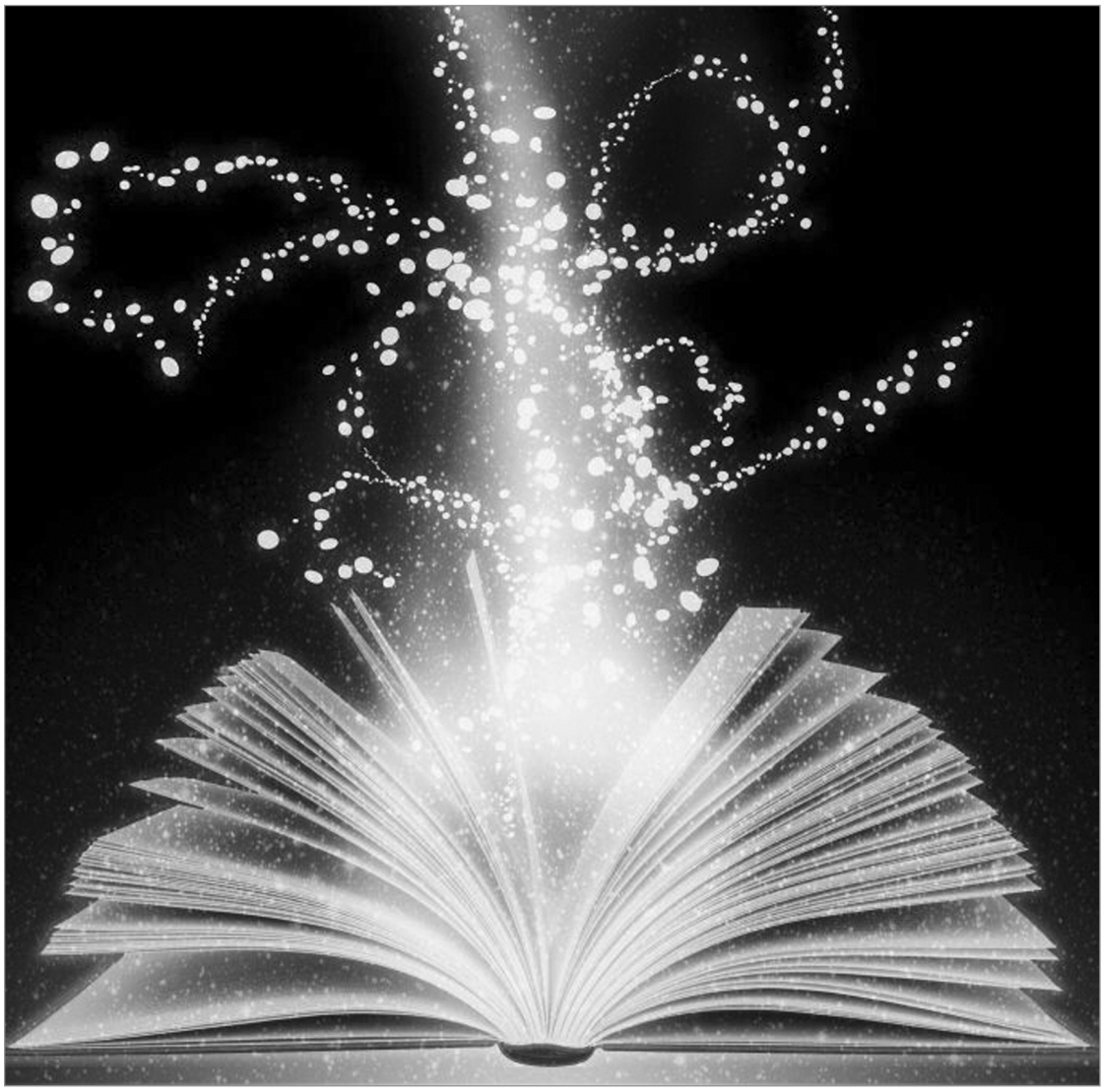

'सियाराम मय सब जग जानी' गोस्वामी तुलसीदास का यह कथन परमात्मा और संपूर्ण जीव-जगत् के संबंध में भारतीय दर्शन का मूल संदेश है। कण-कण में एक ही ईश्वर के दर्शन करना समस्त प्राणी जगत् के प्रति समरसता के भाव को द्योतक हैं। जहाँ समरसता है वहाँ उच्च और नीच के भाव के लिए कोई स्थान नही है। वरन् यह सहयोग, सद्भाव और सहचारी भाव का चिंतन हैं। आज देश में जिस 'समानता' की सर्वत्र चर्चा है उससे कहीं अधिक व्यापक और उच्चकोटि का है 'समरसता' का भाव। प्रस्तुत लेख में समानता और समरसता के इसी अंतर को स्पष्ट कर रहे हैं समाजसेवी रवीन्द्र प्रसाद सिंघल–

MV_January 2019 final for printing:Layout 1 1/16/2019 5:44 PM Page 59

रवीन्द्र प्रसाद सिंघल

समाज में महत्त्वपूर्ण है समरसता का भाव

समानता, समानता का अधिकार आदि शब्दों की आजकल बहुत चर्चा है। समानता क्या है इस पर विचार करने की आवश्यकता है। समानता, समता, समभाव, समरसता ये समानार्थी शब्द या इनके अलग-अलग भाव हैं इस पर विचार करने की आवश्यकता है। उच्चतम न्यायालय ने वर्ष 2017 में तीन तलाक व वर्ष 2018 में समलैंगिकता, विवाहेत्तर संबंध व सबरीमाला में 10 से 50 वर्ष की स्त्रियों के प्रवेश के संबंध में निर्णय दिए इनके केंद्र में समानता का अधिकार मुख्य बिंदु के रूप में था।

समानता

समानता यानी सम या बराबर होना। सम यानी एक रूप राशि दो वस्तुओं में सब कुछ वैसा ही है, दोनों में कोई भिन्नता नहीं है। ऐसा केवल जड़ पदार्थों में ही हो सकता। दो पत्थर के टुकड़े एक समान हो सकते हैं, मेज, कुर्सी, दरवाजे, कारें, बस आदि-आदि एक-सी या समान हो सकती है, चेतना में ऐसा नहीं है। यहाँ तक कि एक डाली पर लगे दो पत्ते भी एक समान नहीं होते हैं। उनमें भी भिन्नता रहती है। शरीर के वाम व दक्षिण भाग में भी भिन्नता है। या कहें की जड़ समानता को दर्शाता है, चेतन में गतिशीलता है। विविधता है। दूसरा शब्द बराबर या बराबरी सम को बराबर बाँटा जा सकता है, विषम को नहीं। विषम को बाँटने पर उसका खंडन हो जाएगा। उदाहरण के लिए आपके पास चार बैल तो आप दो-दो में बराबर बाँट सकते हैं यदि पाँच बैल हैं तो उनको बराबर नहीं बाँट सकते। अन्य शब्दों पर ध्यान देंगे यहाँ केवल इतना समझिए कि समानता जड़ता व विभाजन की ओर लेकर जाती है।

समता

दूसरा शब्द समता में स्थित प्रज्ञता रहती है। जब व्यक्ति राग, द्वेष, लोभ, लालच, अभिमान पूर्वाग्रहों से रहित, स्वार्थ भाव से

ऊपर उठकर, अपने पराये के भेद, इर्ष्या आदि से ऊपर उठकर सत्य के प्रकाश में बुद्धि को स्थित कर व्यवहार करता है, इस स्थिति को समता कहा जाएगा।

समभाव

तीसरा शब्द समभाव जब अंतःकरण में जाति, मत, संप्रदाय, स्त्री-पुरुष आदि के भेद के कारण से उच्च-नीच का भाव न रखकर सब के साथ मानवीय दृष्टि से व्यवहार करना ही समभाव है।

समरसता यह उच्च कोटि का दृष्टिकोण है, सृष्टि में उत्पन्न सभी चर, अचर, जलचर, थलचर, नभचर में विचरण करने वाले, जरायुज, अंडज, स्वेदज, उद्भिज्ज से उत्पन्न सभी देहधारियो में एक ही चेतना के दर्शन करना (गोस्वामी तुलसीदास जी के कहे– 'सियाराम मय सब जग जानी, करहुँ प्रणाम जोरि जुग पानी'।) यानी पूरी सृष्टि के कण-कण में एक ही ईश्वर के दर्शन करना यह समरसता का भाव है।

समरसता

चौथा समरसता यह उच्च कोटि का दृष्टिकोण है, सृष्टि में उत्पन्न सभी चर, अचर, जलचर, थलचर, नभचर में विचरण करने वाले, जरायुज, अंडज, स्वेदज, उद्भिज्ज से उत्पन्न सभी देहधारियो में एक ही चेतना के दर्शन करना (गोस्वामी तुलसीदास जी के कहे– 'सियाराम मय सब जग जानी, करहुँ प्रणाम जोरि जुग पानी'।) यानी पूरी सृष्टि के कण-कण में एक ही ईश्वर के दर्शन करना यह समरसता का भाव है।

उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि चारों शब्दों का भाव अलग-अलग है। अब समानता जोकि आजकल बहुत अधिक विमर्श में है उस पर और विचार करते हैं। जैसा ऊपर आया की जड़ता, विभाजन व संघर्ष यह समानता की देन है। दूसरा समानता में विशेषता समाप्त या गौण हो जाती है, जबकि सृष्टि में सबकी अपनी-अपनी विशेषता और महत्ता है। छोटे से छोटे जीवाणु तक की अपनी विशेषता और महत्ता है।

आजकल स्त्री-पुरुष में समानाधिकार को लेकर बहुत विमर्श चल रहा है। इसी पर विचार को आगे बढ़ाने का प्रयास करता हूँ। स्त्री व पुरुष की शारीरिक रचनाएँ अलग-अलग हैं दोनों के मानसिक चिंतन, बौद्धिक विचार में भी भिन्नता ध्यान में आती है। स्त्री में जहां कोमलता, सहनशीलता, स्नेह, सेवा आदि गुणों की अधिकता रहती है, वहीं पुरुष में कठोरता, शासन करने की वृत्ति, साहस आदि गुणों की अधिकता होती है। स्त्री जननी बनकर सृष्टि को आगे ले जाने का कार्य करती है। वह प्रसव पीड़ा को भी सहन करती है व नए सृजन की निर्मात्री है। पुरुष इसमें सहायक मात्र हैं। इसलिए स्त्री के अधिकार पुरुष से ऊपर हैं। माता का अधिकार पिता के अधिकार से अधिक। स्त्री व पुरुष एक दूसरे के पूरक हैं एक बिना दूसरा अधूरा है। ये एक दूसरे के विरोधी नहीं हैं। दोनों के अपने-अपने अधिकार हैं, अपने-अपने कर्तव्य हैं। उनमें कहीं टकराव नहीं है। भारतीय दर्शन में कहीं भी स्त्री-पुरुष के बीच टकराव नहीं है। दोनों में सहयोग, सद्भाव, सहचारी दोनों एक दूसरे की शक्ति हैं। यह स्पष्ट चिंतन है। प्रत्येक धार्मिक, सामाजिक व पारिवारिक आयोजन दोनों के बगैर पूर्णता को प्राप्त नहीं होते। दोनों में समन्वय व आत्मीयता का भाव है, संघर्ष व विरोध का नहीं था।

आज यह जो स्त्री पुरुष में संघर्ष व एक दूसरे का विरोध दिखता है, यह पश्चिम की देन है, जिसने स्त्री को भोग्या माना। अँग्रेजों के आक्रमण व शासन के दौरान यह बुराई भारत में आ गई और आज इसका

MV_January 2019 final for printing:Layout 1 1/16/2019 5:44 PM Page 61

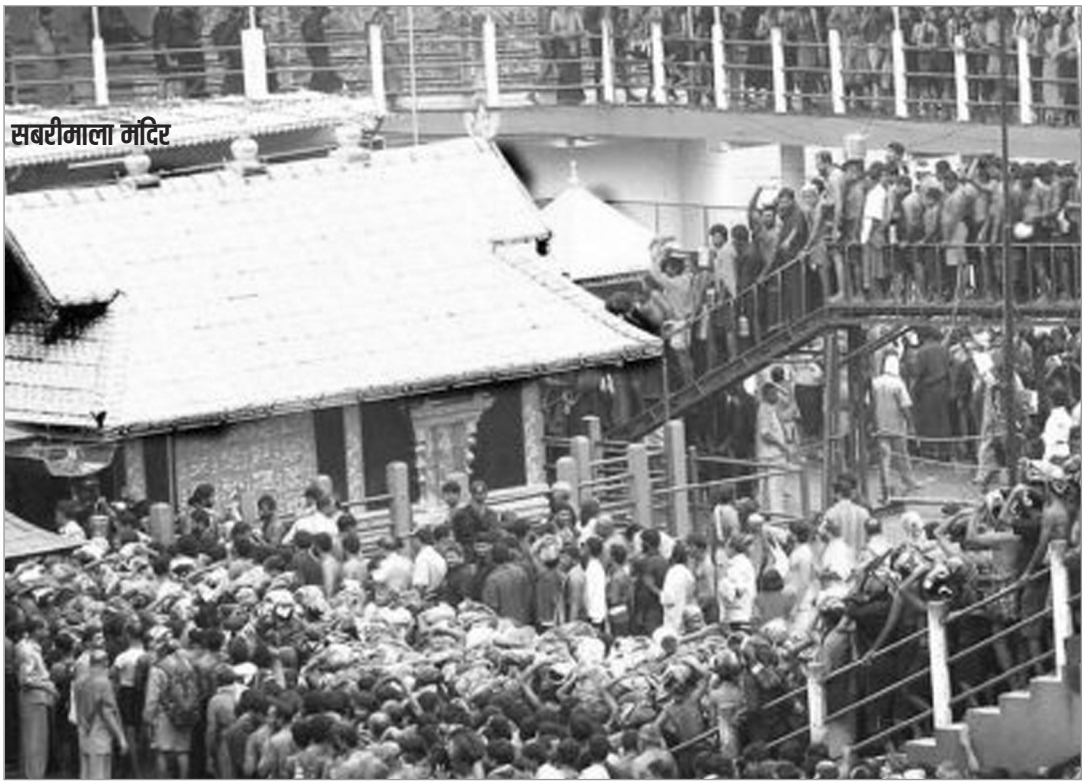
सबरीमाला मंदिर

परिणाम समाज भुगत रहा है और जहाँ समाज में स्त्री को माँ, बहन, बेटी, देवी, कल्याणमयी आदि ऐसे उच्च भाव में स्थान प्राप्त था, आज उसकी दुर्दशा बहुत ही पीड़ादायक है। इसका समाधान क्या है इस पर आगे चिंतन करेंगे।

दूसरा समलैंगिकता में 377 धारा को समाप्त कर इसको अपराध की श्रेणी से बाहर करना ठीक है। परंतु यह केवल दो लोगों के आकर्षण का विषय है ऐसा कहना गलत है। समान लिंग के दो लोगों का एक-दूसरे के प्रति आकर्षण प्राकृतिक नहीं है। ऐसे दो लोगों का (स्त्री या पुरुष) आपस में संबंध बनाना अप्राकृतिक व मानसिक विकृति है। अतः ऐसे लोगों को बीमार मानकर उनके उपचार की व्यवस्था होनी चाहिए। न्यायालय को इस पर भी विचार करना चाहिए था। यदि ऐसे विषयों को सामान्य की श्रेणी में रखा तो उससे समाज में विकृति को बढ़ावा मिलेगा।

तीसरा विवोहतर संबंधों पर न्यायालय का फैसला न्याय की कसौटी पर ही खरा नहीं उतरता है। जब स्त्री पुरुष विवाह के बंधन में बंधते हैं तो उनमें एक दूसरे के प्रति परस्पर विश्वास होना यह मौलिक बात है और जीवन साथी को छोड़कर दूसरे स्त्री, पुरुष से संबंध बनना सीधे-सीधे विश्वासघात है और यदि विश्वासघात को अपराध की श्रेणी से बाहर माना है, तो इस पर क्या टिप्पणी की जाए समझ से परे है। यह फैसला मानव को पशुता की ओर ले जाने वाला है, क्योंकि केवल आकर्षण के साथ-साथ मर्यादा का भी ध्यान रखना आवश्यक है। उसी मर्यादा को न्यायालय का फैसला चोट पहुँचाने वाला है।

चौथा सबरीमाला मंदिर में 10 वर्ष से 50 वर्ष तक की स्त्रियों को प्रवेश का अधिकार देना है। इसके पीछे

MV_January 2019 final for printing:Layout 1 1/16/2019 5:44 PM Page 62

चेतना में कहीं समानता नहीं है। वहाँ विविधता है, उमंग है, उल्लास है। प्रत्येक एक का अपना-अलग अस्तित्व है। प्रत्येक के अपने अधिकार हैं तो प्रत्येक के कर्तव्य भी हैं और कर्तव्यों का निर्वहन ही अधिकार की कसौटी है। यहाँ सब को सब के लिए समभाव है, सद्भाव है। कर्तव्य का पालन है और कर्तव्य पालन से अधिकार स्वतः प्राप्त होगा ही रामायण इसका जीता जागता प्रमाण है। और जहाँ अधिकारों के लिए संघर्ष होगा वहाँ विनाश होगा महाभारत यही शिक्षा देता है।

मुख्य तर्क यह है कि स्त्रियों को पुरुषों के बराबर अधिकार है। उनको मंदिर में जाने से रोकना उनके अधिकारों का हनन है।

भारत में भी कुछ उच्च शिक्षा प्राप्त हुए पाश्चात्य विचारों के रंग में रंगे अपने आप को अति आधुनिक समझने वाले कुछ बुद्धिजीवी भारत में पाश्चात्य जीवनमूल्यों को स्थापित करना चाहते हैं। एक तो भारत में मंदिरों में स्त्रियों का प्रवेश निर्बाध रूप से है और सबरीमाला मंदिर में भी 10 वर्ष से कम व 50 वर्ष से अधिक आयु की स्त्रियों का प्रवेश सहज है। मासिक धर्म के समय स्त्रियाँ अपने घर के पूजा स्थल में भी ज्योत तक नहीं लगाती, क्योंकि यह पवित्रता से जुड़ा हुआ है। सबरीमाला में क्योंकि 40 दिन का अनुष्ठान होता है तो केवल वहाँ की पवित्रता के कारण ऐसा नियम है। अन्यथा अन्य आयु वर्ग की स्त्रियों को वहाँ प्रवेश निर्बाध है। जैसा मैने ऊपर कहा की समानता या बराबरी यह शब्द-विलास है इससे समाज में संघर्ष पैदा होता है जो कलह, विषाद, अराजकता को जन्म देता है और समाज पतनशील हो जाता है। वह जड़ता व पशुता की ओर बढ़ता है। चेतना में कहीं समानता नहीं है। वहाँ विविधता है, उमंग है, उल्लास है। प्रत्येक एक का अपना-अलग अस्तित्व है। प्रत्येक के अपने अधिकार हैं तो प्रत्येक के कर्तव्य भी हैं और कर्तव्यों का निर्वहन ही अधिकार की कसौटी है। यहाँ सब को सब के लिए समभाव है, सद्भाव है। कर्तव्य का पालन है और कर्तव्य पालन से अधिकार स्वतः प्राप्त होगा ही रामायण इसका जीता जागता प्रमाण है। और जहाँ अधिकारों के लिए संघर्ष होगा वहाँ विनाश होगा महाभारत यही शिक्षा देता है। समाज के प्रबुद्धजनों को इसका भार उठाना होगा व समाज प्रबोधन के कार्य को अधिक तीव्र गति से करना होगा तथा स्वयं का आदर्श समाज के सामने रखना होगा तभी आज के वातावरण से समाज बाहर निकलकर आगे आएगा और एक ऐसे समाज का निर्माण होगा जिसमें ना कोई शोषित होगा, न पीड़ित होगा। सभी सद्भाव के साथ मिल-जुल कर एक दूसरे के लिए जीवन जीएं व हर प्राणी अपनी-अपनी मर्यादा में रहकर आनंद से जीवन यात्रा पूरी करेगा।

सर्वे भवंतु सुखिनः,
सर्वे संतु निरामया ।
सर्वे भद्राणि पश्यंतु,
मा कश्चित् दुख भाग भवेतः ।।

(लेखक एक समाजसेवी हैं।)

MV_January 2019 final for printing:Layout 1 1/16/2019 5:44 PM Page 63

मनोगत

मान्यवर महोदय,

मकरसंक्रांति, वसंत पंचमी व होली पर्व की आपको हार्दिक शुभकामनाएँ। आपके सहयोग व स्नेह के बल पर 'मंगल विमर्श' सफलतापूर्वक पाँचवें वर्ष में प्रवेश कर रहा है। मंगल विमर्श का जनवरी, 2019 अंक आपके हाथों में सौंपते हुए प्रसन्नता की अनुभूति हो रही है। पत्रिका के सुधीपाठकों से प्राप्त प्रतिक्रिया व सुझाव हमारे लिए मार्गदर्शक होते हैं। कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के दर्शनशास्त्र विभाग के पूर्व अध्यक्ष डॉ. हिम्मत सिंह सिन्हा ने अपने पत्र में लिखा है कि 'मंगल विमर्श' का जुलाई, 2018 अंक प्राप्त हुआ। निरंतर भारतीय संस्कृति, इतिहास तथा साहित्य के विविध आयाम इसमें अनवरत प्रवाहित हो रहे हैं। इस बार प्रो. सुरेंद्र भटनागर का लेख भारतीय कला-दृष्टि बहुत शोधपरक तथा ज्ञानवर्धक है, जिसमें बहुत से नए क्षितिज छुए गए हैं।

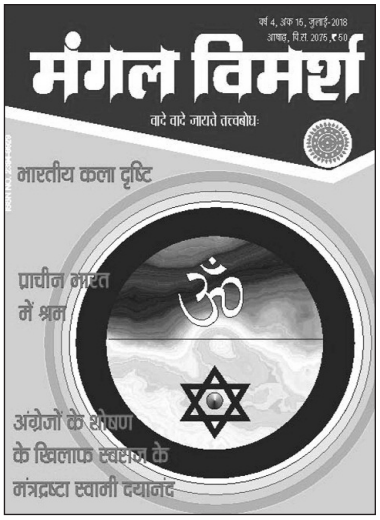

श्री बनवारी जी का लेख 'कर्म और स्वराज्य' आकार में बहुत छोटा है, परंतु जिन दो बिंदुओं पर सूत्र रूप में जो वर्णित किया गया है वह दार्शनिक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है, जिस पर बहुत विस्तार से तथा बहुत कुछ कहा जा सकता है। महान् विचारक अपनी बात सूत्र रूप में ही कह देते हैं फिर आमजन उन पर दीर्घसमय तक विचार करता रहता है। पहली महत्त्वपूर्ण बात तो लेखक का यह कथन है कि धर्म देश-काल सापेक्ष है एक नियम या एक सिद्धांत, परिस्थिति में धर्म हो सकता है, दूसरी में वही अधर्म हो सकता है, इसलिए अपने विवेक से ही परिस्थिति का अवलोकन तथा विश्लेषण करके कोई निर्णय लेना, यही धर्म-बोध है। इस निर्णय के लिए एक कसौटी तो धर्मशास्त्रों में निर्धारित की गई है तदनुसार–

परित्यजेद अर्थकामौ यो स्यातां धर्म वर्जिता ।
धर्मं-चापि असुखोदर्कम् लोक विकृष्टुं एव च ।।
(मनु. 4/121)

अर्थात् उस अर्थ और काम को त्याग देना चाहिए जो धर्म अर्थात सामाजिक नियमों द्वारा वर्जित है, जिनसे समाज में भ्रष्टाचार फैलता हो परंतु उस धर्म को भी तुरंत त्याग देना चाहिए जो समाज में असुख उत्पन्न कर रहा हो या लोक में विकृतियाँ और विकार पैदा कर रहा हो। ऐसा कोई भी सिद्धांत धर्म नहीं कहा जा सकता– वह

MV_January 2019 final for printing:Layout 1 1/16/2019 5:44 PM Page 64

रूढ़ि होगी, पाखंड होगा, धर्माभास होगा परंतु धर्म नहीं होगा। इस कसौटी को मार्गदर्शक मानकर यदि कोई निर्णय लिया जाएगा तो वह समाज को भी विखंडित तथा विकृत होने से बचा सकता है। गीता में इसी बात पर आग्रह किया है–

''यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लार्निभवति भारतः.....
धर्म संस्थापनाथार्य संभवामि युगे-युगे (4:7-8)

एक युग के सामाजिक नियम दूसरे युग की समस्याओं का समाधान नहीं कर पाते, तो वह केवल रूढ़ि या खोखला कर्मकांड बन कर पतन का कारण बन जाते हैं, सर्वत्र दुरावस्था फैल जाती है, समाज में पापाचार, कलह, विद्रोह आदि द्वेष बढ़ जाते हैं। जब रूढ़िगत सिद्धांत परिवर्त्तित परिस्थितियों का समाधान नहीं कर पाते तो अपने-अपने कर्तव्यों से च्युत होकर लोग निषिद्ध आचरण करने लगते हैं, समाज टूटने लगता है, तब नियमों, सिद्धांतों तथा मर्यादाओं की युगानुकूल व्याख्या करके समाज को पुनः स्थिरता प्रदान करने हेतु कुछ दिव्य शक्तियों का प्रादुर्भाव होता है। भारत ने अपनी नैतिक संहिता को सदैव अद्यतन रखा है, इसे बासी नहीं होने दिया, यही हमारी संस्कृति की अमरता का रहस्य है। अतः देश-काल की परिस्थिति के अनुरूप अपने विवेक से उचित-अनुचित का निर्णय करके जो कर्म किया जाता है, वही धर्म है।

दूसरी महत्त्वपूर्ण बात जो लेख में कही गई है वह है कर्म की स्वतंत्रता। मनुष्य अपना कर्म अर्थात् कर्तव्य निर्धारित करने में पूर्णतः स्वतंत्र है। गीता में (2.47) उद्घोष है 'कर्मण्येवाधिकारस्ते' कर्म चुनने तथा निर्णय लेने का तुझे पूरा अधिकार है। यह ईश्वर प्रदत्त अधिकार है, इसलिए इसको न कोई छीन सकता है, न इसे संकुचित कर सकता है, यह अहरणीय है, सारे मानव अधिकर इन्हीं दो अधिकारों–चुनने की स्वतंत्रता तथा निर्णय लेने की स्वतंत्रता से ही निगमित होते हैं। कर्तव्य का निर्धारण अपने 'स्व' पर ही निर्भर करता है, भगवान् भी कोई कर्म मनुष्य पर नहीं थोप सकता। यह स्वतंत्रता ही मानवता का सार है। आज का आधुनिकतम दर्शन अस्तित्ववाद इसी धारणा पर खड़ा हुआ है कि स्वतंत्रता ही मानव की नियति है। मनुष्य उसी सीमा तक मानव स्तर पर अस्तित्ववान है जिस सीमा तक वह इस स्वतंत्रता की अनुभूति करता है तथा इसका प्रयोग करता है– अन्यथा वह पराधीन होने के कारण पाशों में बंधा हुआ पशु स्तर पर जी रहा है या जड़ वस्तुओं की भाँति उसकी बुद्धि पर जड़ता छाई है, वह मानव नहीं, वस्तु है। यह कर्म स्वातंत्र्य ही, मानव की पराकाष्ठा है और इसका अनुपालन करने से ही मनुष्य मुक्ति का अनुभव करते हैं, अतः केवल 'स्व' के तंत्र से ही निर्देशित हो कर अपना कर्तव्य कर्म चुनना ही निःश्रेयस का सच्चा मार्ग है। लेख छोटा होते हुए भी अति प्रशंसनीय है। अन्य लेख भी स्तरीय तथा ज्ञानवर्धक हैं।

स्नेहाकांक्षी
आदर्श गुप्ता
प्रबंध संपादक

'मंगल विमर्श' पत्रिका का स्वामित्व संबंधी विवरण

1. प्रकाशन स्थान	:	सी-84, अहिंसा विहार, सेक्टर-9, रोहिणी, दिल्ली-110084
2. प्रकाशन अवधि	:	त्रैमासिक
3. मुद्रक का नाम	:	आदर्श गुप्ता
क्या भारत का नागरिक है	:	हाँ
पता	:	बी-170, प्रियदर्शिनी विहार, दिल्ली-92
4. प्रकाशक का नाम	:	आदर्श गुप्ता
पता	:	बी-170, प्रियदर्शिनी विहार, दिल्ली-92
5. संपादक का नाम	:	सुनील पांडेय
पता	:	120-वार्तालोक अपार्टमेंट, वसुंधरा, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश
6. उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों	:	मंगल सृष्टि

मैं आदर्श गुप्ता एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गए विवरण सत्य है।

दिनांक : 01 जनवरी, 2019 आदर्श गुप्ता
(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

MV_January 2019 final for printing:Layout 1 1/16/2019 5:44 PM Page 65

सहयोगी वृंद

1. **डॉ. विशेष**
बी-6/46-47, सेक्टर-3,
रोहिणी, दिल्ली - 110085

2. **श्री ओम प्रकाश**
बी-4/399, सेक्टर -8,
रोहिणी, दिल्ली - 110085

3. **श्री मदन नंदवानी**
सी-4/12, सेक्टर-11,
रोहिणी, दिल्ली - 110085

4. **श्री नीरज**
बी-4/401, सेक्टर-8,
रोहिणी, दिल्ली - 110085

5. **मिस. पायल**
एच-3/4, द्वितीय तल, सेक्टर-18
रोहिणी, दिल्ली - 110085

6. **श्री प्रदीप सन्धू**
इ-159, अशोक विहार,
फेस-1, दिल्ली - 110052

7. **श्री देव राज खन्ना**
सी-7/212बी, लारेंस रोड,
दिल्ली - 110035

8. **श्री संजीव नैयर**
260, गुजरावाला टाउन, फेस-3
दिल्ली

9. **श्री संजय कुमार दुआ**
सी-11/69, सेक्टर-3, रोहिणी
दिल्ली - 110085

10. **श्री भारत भूषण**
2142, रानीबाग, शकूर बस्ती
दिल्ली - 110034

11. **श्रीमती वीणा गंभीर**
मुरली कॉस्मेटिक
गली नं 1, श्री नगर, शकूबर बस्ती
दिल्ली - 110034

12. **श्री पुष्कर खंडूजा**
डी-17, सेक्टर-3, रोहिणी,
दिल्ली-110085

13. **श्रीमती निर्मल रानी नागपाल**
मकान न. 2/42, सुभाष नगर
दिल्ली

MV_January 2019 final for printing:Layout 1 1/16/2019 5:46 PM Page 66

मंगल विमर्श
सदस्यता -प्रपत्र

मंगल विमर्श त्रैमासिक पत्रिका

मुख्य संरक्षक
डॉ. बजरंगलाल गुप्ता

प्रधान संपादक
ओमीश परुथी

संयुक्त संपादक
डॉ. रवींद्र अग्रवाल

प्रबंध संपादक
आदर्श गुप्ता

सदस्यता -शुल्क

10 वर्षों के लिए
₹2000 मात्र

पत्रिका सदस्यता शुल्क हेतु
मंगल सृष्टि (Mangal Srushti)
के नाम चैक/ड्राफ्ट सी-84, अहिंसा विहार,
सेक्टर-9, रोहिणी, दिल्ली- 110085 पर भेजें।
फोन नं. +91-9811166215,
+91-11-27565018
+91-11-42633513

मंगल विमर्श की..... वर्षों की सदस्यता हेतु.....
रुपये का ड्राफ्ट/चैक क्रं. ..... दिनांक.....
बैंक..... भेज रहे हैं,
कृपया..... वार्षिक सदस्य बनाने का कष्ट करें।

नाम.....
पता.....
.....
..... पिनकोड .....
फोन :..... मोबाइल:.....
इ-मेल.....

इ-मेल mangalvimarsh@gmail.com **वेब साइट** www.mangalvimarsh.in